गेहूँ एवं जौ

स्वर्णिमा

पंचम अंक–2013

विशेषांक

संसाधन संरक्षण तकनीक द्वारा फसल उत्पादन

गेहूँ अनुसंधान निदेशालय

करनाल–132001, हरियाणा

संस्थान गीत

आधार हरित क्रान्ति का, स्तम्भ स्वावलंब का
गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, गौरव प्रतीक राष्ट्र का
आधार हरित क्रान्ति का.....

दे अन्न बहुल सम्पदा, प्रगति-पथ की सहजता
स्वर्णिम-भविष्य की कल्पना, साकार करता सर्वथा
शोधरत, समन्वयक, है दूरदृष्टा सतत सा
भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद की कृषक सेवी संस्था
आधार हरित क्रान्ति का.....

फसल सुधार और सुरक्षा, संसाधन प्रबंधन, गुणवत्ता,
नूतन विज्ञान, सांख्यिकी, सामाजिक विज्ञान, यहाँ सभी विधा
कृषि विश्वविद्यालय और संस्थान, मिलकर बनायें इससे महान
एकता एवं परिश्रम से, विश्व विख्यात है ये व्यवस्था
आधार हरित क्रान्ति का.....

सुपाच्य एवं रोग-शमन, सोम-रस, हव्य-हवन
करता उत्पाद वृद्धि-यतन, जौ फसल विकास का
श्रेयस प्रयास अनवरत, भावी-पीढ़ी को अग्रसरित
दे जनपूर्ण देश को, संरक्षित कृषि स्थायित्वता
आधार हरित क्रान्ति का.....

डा. रतन तिवारी
प्रधान वैज्ञानिक, जैव प्रौद्योगिकी

गेहूँ एवं जौ

स्वर्णिमा

पंचम अंक–2013

विशेषांक

संसाधन संरक्षण तकनीक द्वारा फसल उत्पादन

गेहूँ अनुसंधान निदेशालय

करनाल–132001, हरियाणा

अनुज कुमार, राजपाल मीना, चन्द्रनाथ मिश्र, विष्णु कुमार, ओम प्रकाश गुप्ता एवं राजेन्द्र कुमार (2013) गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा, गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, करनाल – 132 001, पृष्ठ 134

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा

पंचम अंक

सम्पादक मंडलः
मुख्य सम्पादकः अनुज कुमार
सम्पादकः राजपाल मीना, चन्द्रनाथ मिश्र,
विष्णु कुमार, ओम प्रकाश गुप्ता एवं राजेन्द्र कुमार

संरक्षण एवं प्रकाशक : इंदु शर्मा
परियोजना निदेशक
गेहूँ अनुसंधान निदेशालय
करनाल – 132 001, हरियाणा
दूरभाष : 0184-2267490 फैक्स : 0184-2267390
वेबसाइट : www.dwr.in ई-मेल : dwr@vsnl.com

प्रतियाँः 500

छायाचित्रः राजेन्द्र कुमार शर्मा

मुद्रण : इन्टैक प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स
353, मुगल कनाल, करनाल – 132 001
दूरभाष : 0184-4043541, 3292951
ई-मेल : jobs.ipp@gmail.com

प्राक्कथन

आधुनिक कृषि प्रणालियों की वजह से भारत में न सिर्फ खाद्यान्न सुरक्षा एवं संप्रभुता निश्चित हुई अपितु हम कई फसलों का निर्यात करने में भी सक्षम हुए हैं। विकास के इस दौर में निश्चित तौर पर मृदा क्षरण, पोषक तत्वों की कमी, मृदा में कार्बनिक पदार्थों की कमी, गिरता हुआ भूजल स्तर, जैव विविधता में कमी, जलवायु परिवर्तन आदि कुछ चुनौतियाँ भारतीय कृषि के पटल पर उभरी हैं। जलवायु परिवर्तन की वजह से अति वृष्टि व अनावृष्टि, वर्षा जल का असमान वितरण, अंतस्थ ताप (टर्मिनल हीट), ओलावृष्टि, कीड़ों एवं बिमारियों के प्रकोप एवं प्रवृति में अंतर आदि भी देखने को मिला है। अतः इन चुनौतियों के परिपेक्ष्य में कृषि में उन नये आयामों पर जोर दिये जाने की आवश्यकता है जो संसाधनों; मृदा, जल, समय, धन, मजदूर आदि का समुचित उपयोग सुनिश्चित करते हए प्राकृतिक संसाधनों को संरक्षित रखे तथा उत्पादन को निरंतर बढ़ाये एवं टिकाऊ बनाए। हाल के वर्षों में संरक्षण खेती एक पर्याय बनकर उभरी है जो न केवल एक टिकाऊ उत्पादन प्रणाली प्रदान करती है बल्कि उत्पादन स्तर को बढ़ाती है तथा प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण व मृदा सेहत का ख्याल भी रखती है।

इसी क्रम में धान–गेहूँ फसल पद्धति में अनेक तकनीकों का प्रादुर्भाव हुआ जैसे जीरो टिलेज, रोटरी टिलेज, मेंड़ पर बुआई, हैप्पी/टर्बो सीडर से बुआई, रोटरी डिस्क ड्रील, लेजर लैंड लेवलिंग, धान की सीधी बुआई, रीले मूँग व कपास में रीले गेहूँ आदि ऐसी कृषि परंपराएं हैं जो संरक्षित कृषि के नए विकल्प बनकर उभरी हैं। यदि इन तकनीकों का किसान अंगीकरण करते हैं तो इससे समय, श्रम, धन, जल आदि में समुचित बचत होती है तथा एक टिकाऊ कृषि प्रणाली की स्थापना होती है जो दीर्घकालिक है। एक अनुमान के अनुसार सिंधु–गंगा के मैदानी इलाके में धान–गेहूँ फसल प्रणाली के अंतर्गत लगभग 2.0 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल में संरक्षण खेती अपनाई जा रही है जिसमें अधिकतर योगदान जीरो टिलेज तकनीक का है।

संसाधन संरक्षण तकनीकों का प्रयोग आधुनिक कृषि में नितांत आवश्यक है क्योंकि इनके लगातार प्रयोग से वर्तमान की तमाम चुनौतियों का आसानी से सामना किया जा सकता है। इसके आर्थिक, सामाजिक, पर्यावरण, मृदा सेहत, जलवायु परिवर्तन, अंतस्थ ताप (टर्मिनल हीट) जैसे चुनौतियों के कसौटी पर भी ये तकनीकें कारगर सिद्ध हो रही है। अतः विश्व पटल पर कृषि चुनौतियों के मद्देनजर कृषि प्रणालियों में संसाधन संरक्षण तकनीकों का समावेश व फसल विविधीकरण अहम है। अतः संसाधन संरक्षण तकनीकों के बृहत् स्तर पर अंगीकरण को बढ़ावा देने के लिए तथा छोटे एवं सीमांत किसानों में इन तकनीकों की उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए विभिन्न राज्यों की कृषि विस्तार सेवाओं को सशक्त बनाते हुए विभिन्न विकास योजनाओं द्वारा इन्हें किसानों तक पहुंचाने के लिए गहन प्रयास किए जाने की आवश्यकता है।

हमें आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि **संसाधन संरक्षण तकनीक द्वारा फसल उत्पादन** पर आधारित गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा का पंचम अंक वैज्ञानिकों एवं किसानों के लिए काफी लाभदायक सिद्ध होगा।

इन्दु शर्मा

इन्दु शर्मा
परियोजना निदेशक

विषय सूची

1. **धान–गेहूँ फसल चक्र में ज़ीरो जुताई तकनीक : पुनरावलोकन एवं संभावनायें** 1
रमेश कुमार शर्मा, राजेन्द्र सिंह छोकर, अनुज कुमार एवं रणधीर सिंह

2. **टिकाऊ फसल उत्पादन और अधिक संसाधन उपयोग दक्षता के लिए संरक्षण खेती** 12
तापस कुमार दास एवं सीमा सेपट

3. **संरक्षण कृषि अपनायें और गेहूँ की पैदावार बढ़ायें** 21
मिजानुल हक एवं बीरेन्द्र कुमार

4. **पूर्वी उत्तर भारत में सघन गेहूँ उत्पादन तकनीक** 27
एल पी तिवारी, एन बी सिह, वाई पी सिंह, पी के गुप्ता, जावेद बहार, राजवीर सिंह, जितेन्द्र कुमार एवं चारुल कंचन

5. **संरक्षण तकनीकों द्वारा फसल उत्पादन** 31
वंदिता मित्तल, रजिता तुरन, सोनिया श्योरान एवं ममृथा एच एम

6. **संसाधन संरक्षण तकनीक द्वारा गेहूँ का उत्पादन** 34
रमेश चन्द, सी पी श्रीवास्तव, जी सी मिश्रा, वी के मिश्रा, एस के सिंह, बी अरूण एवं अरूण कुमार जोशी

7. **संसाधन संरक्षण तकनीक द्वारा फसल उत्पादन** 41
सुखदेव सिंह एवं एम के कोशिक

8. **संसाधन संरक्षण एवं देश की खाद्य सुरक्षा** 45
हरीओम, डी एस दोदान एवं मंगत राम

9. **उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में गेहूँ की उन्नत खेती** 50
अभिषेक बहुगुणा, अरूण भट्ट, संध्या बहुगुणा एवं मयंक नौटियाल

10. **बीज उत्पादन हेतु गेहूँ में उगाएं खीरा–ककड़ी वर्गीय सब्जियों की अंतः रिले फसल** 54
राजेन्द्र सिहं छोकर, सुरेश चंद राणा एवं विनोद कुमार पंडिता

11. **पूर्वोत्तर भारत में सिंचाई की परंपरागत बाँस टपका विधि** 60
जे के पाण्डेय, अनुज कुमार, रणधीर सिंह एवं रमेश चन्द

12. **राजस्थान में जल संसाधन परिदृश्य एवं जल संरक्षण की वैज्ञानिक तकनीकें** 65
एस आर वर्मा, आर के बैरवा एवं राज पाल मीना

13. **जल संरक्षण के माध्यम से फसलों में जल उपयोग दक्षता में वृद्धि** 76
मामृथा एच एम, गिरीश चन्द्र पाण्डेय, कर्णम वेंकटेश, राजेन्द्र सिंह एवं विनोद तिवारी

14. **फसल जल उपयोग में सुधार लाने के लिए जैवप्रौद्योगिकी दृष्टिकोण** 78
विदिशा ठाकुर, सोनिया श्योरान, अनीता मीना एवं रेखा मलिक

15. **संसाधन संरक्षण में जैवप्रौद्योगिकी की भूमिका** 81
राजेन्द्र सिंह, गिरीश चन्द्र पाण्डेय, मामृथा एच एम एवं रतन तिवारी

16. **संरक्षण कृषि का मृदा की भौतिक व रासायनिक कारकों पर प्रभाव** 83
अनिता मीणा, रेखा मलिक एवं सुमन लता

17. **गैर पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों द्वारा ऊर्जा संरक्षण** 84
के चायल, एस आर वर्मा एवं बी एल ढाका

18. **संसाधन संरक्षण तकनीकों पर "चुर्णिल आसिता" (पाउडरी मिल्ड्यू) रोग की संभावना, प्रबंधन एवं उपज पर प्रभाव** 94
पंकज कुमार सिंह, जितेन्द्र कुमार, विपिन पंवार, आर सेल्वाकुमार, एम एस सहारण एवं इंदु शर्मा

19. **उचित संसाधन प्रबंधन द्वारा माल्ट जौ उत्पादन** 97
ए एस खरब, दिनेश कुमार, विष्णु कुमार, जोगेन्द्र सिंह, आर सेल्वाकुमार एवं मदन लाल

20. **जौ उत्पादन प्रौद्योगिकी** 101
लालचन्द प्रसाद, सतीश बोरनारे, रवीन्द्र प्रसाद एवं अनंत मडकेमोहेकर

21. **भारत में जौ उत्पादन हेतु उचित संसाधन प्रबंधन** 107
जोगेन्द्र सिंह, विष्णु कुमार, दिनेश कुमार एवं ए एस खरब

22. **गेहूँ की फसल में समेकित कीट प्रबंधनः आज की आवश्यकता** 112
पी सी मीना

23. **संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियाँ अपनाकर अधिक उत्पादन व लाभ लें** 117
राजेन्द्र सिंह छोकर, अनुज कुमार, आर के शर्मा, रणधीर सिंह एवं सुरेश चन्द राणा

24. **धान की सीधी बुआई के लिए उन्नत विधियाँ** 123
आर एस छोकर, आर के शर्मा, अनुज कुमार एवं रणधीर सिंह

25. **धान के पूरे पराल में गेहूँ की टर्बो सीडर से बीजाई** 129
विकास चौधरी

26. **संरक्षण तकनीकों पर एक प्रगतिशील किसान का अनुभव** 131
महावीर सिंह रोड़

धान–गेहूँ फसल चक्र में ज़ीरो जुताई तकनीक : पुनरावलोकन एवं संभावनायें

je'k dekj 'kekZ] jktsUæ flag Nkdj] vuqt dekj ,oa j.kèkhj flag

xgw¡ vuqlèkku funs'kky;] djuky] gfj;k.kk

धान तथा गेहूँ भारत की दो मुख्य फसलें हैं जो क्रमशः 30 तथा 18 प्रतिशत क्षेत्र में उगाई जाती हैं। इन्हें क्रमशः लगभग 42 तथा 30 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में उगाया जाता है। यह दोनों फसलें मिलकर लगभग 75 प्रतिशत खाद्य पदार्थ पैदा करती हैं। गेहूँ जिसे 1950–51 में 9.75 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में उगाया जाता था आज लगभग 30 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में उगाई जाती है। गेहूँ उगाने वाले ज्यादातर क्षेत्र में प्रति वर्ष दो या दो से अधिक फसलें ली जाती हैं। धान के लगभग 25 प्रतिशत क्षेत्र में दूसरी फसल गेहूँ की ली जाती है जोकि गेहूँ के कुल क्षेत्र का लगभग 35 प्रतिशत है। गेहूँ आधारित फसल चक्रों में से मुख्य हैं; धान–गेहूँ, कपास–गेहूँ, सोयाबीन–गेहूँ, मक्का–गेहूँ तथा गन्ना–गेहूँ जिन्हें क्रमशः 10.5, 2.0, 1.0 तथा 1.0 मिलियन हैक्टर में उगाया जाता है। इनमें से गंगा के मैदानी क्षेत्रों पंजाब, हरियाणा, राजस्थान, उत्तर प्रदेश, बिहार, पश्चिम बंगाल के कुछ क्षेत्रों, असम एवं मध्य प्रदेश, गुजरात तथा महाराष्ट्र में मुख्यतः धान–गेहूँ और गन्ना–गेहूँ फसल चक्र बड़े क्षेत्र में प्रचलित है। कौटिल्य द्वारा दूसरी शताब्दी में लिखे गए अर्थशास्त्र में फसल–चक्रों पर आधारित खेती का उल्लेख किया गया है। इसमें लिखा गया है कि धान को शुरू में, दलहनी फसलों को मध्य में तथा गेहूँ को इसके बाद उगाया जाए। अतः मगध (बिहार) के खेतों में लगभग 2000 वर्ष पूर्व भी धान–गेहूँ फसल चक्र प्रचलित था। इसके बाद सोलहवीं शताब्दी में अकबर महान के समय में भी आईने अकबरी में गंगा के मैदानी क्षेत्रों में इस फसल चक्र का हवाला दिया गया है। इस फसल चक्र का 19वीं तथा 20वीं शताब्दी के जिला गैजेटियर में भी व्याख्यान किया गया है जो आजकल के पंजाब, उत्तर प्रदेश, बिहार तथा पश्चिम बंगााल हैं। धान–गेहूँ फसल चक्र जो कि सदियों पुराना है की पैदावार क्षमता पर आजकल प्रश्न चिन्ह लगाये जा रहे हैं।

thjks tqrkbZ&iqujkoyksdu

पैदावार बढ़ाने की प्रथा तथा खर्च कम करने के लिए मशीनीकरण के लिए उचित जुताई मशीनें बनाने पर डा. एम.वी. राव ने अगस्त 1985 में गेहूँ अनुसंधान निदेशालय के साथ पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय में आयोजित 24वीं गेहूँ एवं जौ कार्यकर्ता मीटिंग में जोर दिया था। अस्सी के दशक के मध्य में गेहूँ अनुसंधान निदेशालय के अन्तर्गत उचित धान–गेहूँ की किस्में, खाद तथा अच्छी फसल के लिए कुछ शुरूआती ट्रायल किये गए। इसके बाद 1989 में धान–गेहूँ फसल चक्र पर अनुसंधान हेतू एक बैठक बुलाई गई जिसके बाद भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद–अन्तर्राष्ट्रीय धान अनुसंधान संस्थान–सीमिट द्वारा 1991 में एशियन डेवलपमेन्ट बैंक की सहायता से एक सांझा प्रोग्राम शुरू

किया गया। इस प्रोजेक्ट में गेहूँ अनुसंधान निदेशालय के नेतृत्व में गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं तकनीकी विश्वविद्यालय, पन्तनगर तथा नरेन्द्र देव कृषि एवं तकनीकी विश्वविद्यालय, फैजाबाद द्व ारा एक सर्वेक्षण किया गया। बाद में 7 अन्य केन्द्र नार्प फेज–2 में इसमें सम्मिलित किये गए। इन सर्वेक्षणों के दौरान यह पाया गया कि खर्च कम करने तथा पैदावार बढ़ाने के लिए फसल उगाने के लिए खेत की जुताई एक मुख्य मुद्दा है, जिस पर ध्यान देना चाहिए।

thjk tqrkbZ D;k gS\

बिना खेत तैयार किए फसल बुआई करना ही ज़ीरो जुताई कहलाता है। इसी काम के लिए बनाई गई एक विशेष बीज एवं खाद मशीन द्वारा धान की कटाई के तुरन्त बाद बिना खेत तैयार किए गेहूँ की बुआई कर दी जाती है।

thjk tqrkbZ e'khu dk fodkl

सत्तर के दशक के शुरू में ही पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना के वैज्ञानिकों ने ज़ीरो जुताई के फायदों का विवरण दिया था लेकिन उपयुक्त मशीन उपलब्ध न होने के कारण यह तकनीक किसानों के खेतों तक नहीं पहुँच पाई। क्योंकि जुताई तकनीक की सफलता में उपयुक्त मशीन का एक विशेष महत्व है। इसलिए नार्प फेज–2 के अन्तर्गत अटचीसन मेक की दो ज़ीरो जुताई बीज–एवं खाद मशीनें 1992 में न्यूजीलैण्ड से आयात की गईं। इनमें से एक मशीन को गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं तकनीकी विश्वविद्यालय, पन्तनगर भेजा गया तथा गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, करनाल द्वारा इसे भारतीय परिस्थितियों के अनुसार ढालने हेतू कुछ अनुदान भी उपलब्ध करवाया गया। इस तरह डा. बच्चन सिंह के नेतृत्व में केवल एक ही साल में पन्तनगर ज़ीरो टिल मशीन का विकास हुआ। इस मशीन में एक कमीं यह थी कि इसका ड्राईविंग चक्का जो कि एक तरफ लगा हुआ था वह जहां भी मामूली सा भी गड्ढा आ जाता था नहीं चलता था जिसके कारण गेहूँ एक सार नहीं उगती थी तथा कई जगह पर खेत खाली रह जाता था।

thjk tqrkbZ rduhd esa lq/kkj

ज़ीरो जुताई तकनीक तथा ज़ीरो जुताई खाद एवं बीज मशीन पर गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, करनाल में 1993 से शोधकार्य अनुसंधान फार्म तथा किसानों के खेतों पर साथ–साथ शुरू किया

गया। इसी कड़ी के अन्तर्गत 1996 में मशीन में जो कमीं थी उसे ए.एस.एस. फाऊंडरी, जंड़ियालागुरू, अमृतसर के सक्रीय योगदान से ठीक किया गया। इसमें एक तरफ लगे ड्राइविंग चक्के को मशीन के आगे लगाया गया तथा उसे फ्लोटिंग बनाया गया और पहले जहाँ यह लगा था वहाँ पर मशीन को सन्तुलित करने वाला चक्का लगाया गया। आगे लगा फ्लोटिंग चक्का खेत समतल न होने पर भी ठीक से काम करता है। गेहूँ उत्पादन तकनीक पर 1996 के बाद उत्तर पश्चिमी मैदानी भारत के राज्यों के कृषि विभाग के कर्मचारियों के लिए जो भी ट्रेनिंग गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, करनाल द्वारा आयोजित की गई उनमें जुताई तकनीकों पर अधिक ध्यान केन्द्रित किया गया। साथ ही साथ ज़ीरो जुताई में बीज, खाद व पानी की जरूरत सुनिश्चित करने हेतू अनुसंधान जारी रखा गया। करनाल के आस–पास के किसानों ने इस विधि को अपनाने में खास रूचि जाहिर की। लगभग इसी समय राज्य कृषि विभागों तथा राज्य कृषि विश्वविद्यालयों ने भी उस ज़ीरो जुताई तकनीक में रूचि दिखानी शुरू की। चौधरी चरण सिंह हरियाणा कृषि विश्वविद्यालय, हिसार, क्षेत्रीय अनुसंधान संस्थानों, कौल व उचानी तथा राज्य कृषि विभाग के अथक प्रयासों से यह तकनीक तेजी से किसानों के खेतों तक पहुँची। अब इस तकनीक के अपनाने के कारण किसान 2500 से 3500 रूपये प्रति हैक्टर की बचत करने पर भी पहले जितनी ही पैदावार ले रहे हैं। किराये पर भी इस तकनीक से गेहूँ की बुआई में 1000 से 12009 रूपये प्रति हैक्टर ही बुआई खर्च आता है। इस तकनीक से ईंधन तथा खेत तैयार करने व बुआई करने के समय में बचत होती है तथा मेहनत भी कम लगती है। इस तकनीक का एक और फायदा यह है कि धान काटने के तुरन्त बाद गेहूँ की बुआई समय पर किये जाने से पैदावार अधिक होती है। जोकि खासकर पहले बासमती काटने के बाद देर से बुआई होने के

कारण गेहूँ की पैदावार कम होती थी। क्योंकि 25 नवम्बर के बाद गेहूँ बोने पर 30 किलोग्राम प्रति हैक्टर प्रति दिन कम पैदावार होती है।

e'khu d ekin.M

इस मशीन के साथ धान काटने के बाद बिना जुताई किये ही फसल की बुआई की जाती है जिससे खेत की जुताई की जरूरत ही नहीं पड़ती। यह मशीन एक बार में 9 से 11 लाईनों में बीज व खाद की बुआई करती है। खाद व बीज मीटरिंग प्रणाली को आगे लगा फ्लोटिंग ग्राऊंड ड्राईविंग चक्का स्प्रोकेट तथा चेन द्वारा शक्ति प्रदान करता है। इस मशीन के लाईन खोलने वाले फाले उल्टी टी की तरह हैं तथा इन्हें आवश्यकता अनुसार 170 से 230 मिलीमीटर या इससे भी कम या अधिक दूरी पर लगाया जा सकता है। इस मशीन को चलाने के लिए 25 हार्स पावर वा उससे बड़े ट्रैक्टर की आवश्यकता पड़ती है। इस मशीन के मापदण्ड सारणी–1 में दिये गए हैं।

lkj.kh 1- VDVj }kjk pkfyr thjk tqrkbZ [kkn ,oa cht e'khu d ekin.M

ekin.M	thjk tqrkbZ e'khu
प्रकार	ट्रैक्टर चालित
आवश्यक ताकत, किलोवाट	19 (25 एच.पी.)
परिमाप, मि.मी. (लम्बाईxचौडाईxऊंचाई)	1980–2020 x 1500 x 1300
फ्रेम	चौरस (माईल्ड स्टील बॉक्स सैक्शनः 50–70 मि.मी. x 50–70 मि.मी.)
मॉउंटिंग	बीज एवं खाद बक्से
फाले (प्रकार एवं नम्बर)	उल्टी टी नूमा, 9–11 जिनकी दूरी 170–230 मि.मी. घटाई बढ़ाई जा सकती है
बीज मीटरिंग (प्रकार एवं नम्बर)	फ्लोटेड फीड रोलर/इनक्लाइन्ड प्लेट , 9–11
पावर ट्रॉसमीशन	स्प्रोकेट चेन ड्राईव के साथ ग्राउंड व्हील
ग्राऊंड़ पहिया, मि.मी.	सामने लगाया गया फ्लोटिंग टाईप चक्का जिस पर बाहर की तरफ लग्ज लगे हों। व्यास : 380 मि.मी. चौड़ाई : 150 मि.मी लग्ज संख्या : 10 लग्ज की ऊँचाई : 30 मि.मी लग्ज का कोण : 90°
खाद मीटरिंग (प्रकार एवं नम्बर)	कप सैल फीड वाले खड़े रोलर, 9–11
कीमत, रूपये[1]	38000 (9 फाले) 40000 (11 फाले)

[1] इस मशीन पर हरियाणा सरकार से 50 प्रतिशत की आर्थिक सहायता भी उपलब्ध है।

यह मशीन एक आम खाद एवं बीज ड्रिल की तरह की ही है। इस मशीन में सिर्फ फालों का फर्क है जो खुरपानूमा न होकर चाकूनूमा तथा उल्टी टी के आकार के होते हैं जो एक पतली सी लाईन मिट्टी में खोलते हैं जिनमें खाद व बीज गिरता है। उल्टी टी से जो लाईन खुलती है वह नीचे से अधिक खुली होती है तथा गीलापन देर तक बनाए रखने में मदद करती है। इससे गेहूँ अच्छी उगती है तथा अधिक गीलापन गेहूँ को जल्दी से बड़ी होने में भी मदद करता है। क्योंकि इन फालों को बिना तैयार किए खेत में चलाया जाता है इसलिए इन्हें आम ड्रिल के मुकाबले अधिक मजबूत लोहे से बनाया जाता है। इस मशीन की कीमत लगभग 40000/– रूपये है तथा हरियाणा में इस पर 50 प्रतिशत की सरकारी छूट उपलब्ध है। मशीन की कीमत को केवल 15 एकड़ बुआई की बचत में ही पूरा किया जा सकता है।

ifjpkyu ifjfLFkfr;k

यह एक आम धारणा है कि ज़ीरो जुताई द्वारा संतोषजनक फसल उगाने के लिए मिट्टी में नमीं सामान्य से अधिक होनी चाहिए। लेकिन सामान्य या सामान्य से थोडी कम नमीं में भी ज़ीरो जुताई से बुआई की जा सकती है क्योंकि गेहूँ कम नमी में भी उगने की क्षमता रखती है। इसलिए ज़ीरो जुताई सामान्य से कुछ गीलेपन से लेकर सामान्य से कुछ कम नमी तक प्रयोग में लाई जा सकती है जबकि सामान्य खेत प्रयोग करके गेहूँ बोने के लिए हमें उचित नमी की ही अवश्यकता होती है।

कम्बाईन से धान की कटाई के बाद बिखरा हुआ भूसा ही एक मुसीबत है जिसे इकट्ठा करना या फिर जलाना पड़ता है। लेकिन ज़ीरो जुताई के लिए जमीन में गड़ा हुआ 45 से.मी. तक ऊँचाई वाला भूसा कोई मुश्किल पेश नहीं करता। इसलिए ज़ीरो जुताई अपनाने से भूसा जलाने में भी कमी आती है क्योंकि भूमी में गड़ा हुआ लगभग 50% भूसा बिना जला ही रह जाता है। इससे पर्यावरण प्रदूषण में भी कमी आयेगी क्योंकि कम भूसा जलाना पड़ता है। लगभग 50% भूसा वापस मिट्टी में मिलने से भूमि के उपजाऊपन को देर तक बनाये रखने में भी सहायता मिलेगी।

खेत में ले जाने से पहले मशीन का उचित बीज व खाद डालने के लिए मापांकन कर लेना चाहिए तथा यह भी सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि हर लाईन में एक जैसा बीज व खाद पड़ रहा है। समय से बुआई के लिए 1000 दानों के भार के हिसाब से 100–125 किलोग्राम प्रति हैक्टर बीज की अवश्यकता होती है। देर से बुआई के लिए 25 प्रतिशत तथा बहुत देर यानि कि जनवरी में बुआई के लिए बीज की दर को और 25 प्रतिशत बढ़ा लेना चाहिए। खाद डालने के लिए ड्रील को 185–190 किलोग्राम प्रति हैक्टर की दर से एन.पी.के. मिश्रण (12:32:16) डालने के लिए मापांकन करना चाहिए। इस तरह फासफोरस एवं पोटाश की पूरी मात्रा तथा एक भाग नत्रजन की भरपाई हो जाती है। शेष बचा नत्रजन 275 किलोग्राम प्रति हैक्टर यूरिया को दो भागों में डालना चाहिए। बुआई 50–70 मिलीमीटर गहराई पर करनी चाहिए। यदि खेत में खरपतवार उगे हुए हों तो 0.5 प्रतिशत गलाईफोसेट के घोल का बुआई से एक दिन पहले छिड़काव करना चाहिए। इस तरह बाद में बहुत

कम खरपतवार उगते हैं क्योंकि जमीन की उपरी सतह में पड़े बीज उग चुके होते हैं जिन्हें हम मार देते हैं तथा ज्यादा गहराई में पड़ा खरपतवार का बीज उग नहीं पाता।

वर्ष 1999–2000 में करनाल के आस–पास सर्वेक्षण से पता चला कि किसान धान काटने के बाद गेहूँ उगाने के लिए विभिन्न उपकरणों से 6 से 17 बार ट्रैक्टर द्वारा जुताई करते थे तथा 1500 से 2000 रूपये (आज के परिवेश में 3000 से 3500 रूपये) प्रति हैक्टर खर्च करते थे। छोटे व मध्यम श्रेणी के किसान जो किराये पर ट्रैक्टर एवं अन्य उपकरण लेते थे वह 6–8 बार जुताई करने पर भी उतना ही पैसा खर्च करते थे। औसतन किसान धान के बाद गेहूँ उगाने के लिए 12 जुताई करता था (सारणी 2)। बीज एवं खाद ड्रिल से दो जुताईयां कम की जा सकती हैं तथा ज़ीरो जुताई में केवल एक ही बार ट्रैक्टर चलाना पड़ता है। इस तरह सामान्य विधि से खेत तैयार करने तथा ड्रिल से बुआई करने में लगभग 25 प्रतिशत समय एवं 19 प्रतिशत ईन्धन की बचत की जा सकती है तथा ज़ीरो टिलेज से यह बचत क्रमशः 88 एवं 93 प्रतिशत होती है।

lkj.kh 2- fdlku ds [ksr ij fofHkUu tqrkbZ rduhdksa esa le; ,oa bZa/ku dh [kir

tqrkbZ rduhd	VªSDVj dk ifjpkyu	Lke; ?k.Vk@gS-	bZa/ku dh [kir yhVj@gS-	Lke; dh cpr %	bZa/ku dh cpr %
ज़ीरो जुताई	1	1.56	6.00	87.59	92.50
परम्परागत (ड्रिल)	10	9.41	65.00	25.14	18.75
परम्परागत (छिट्टा)	12	12.57	80.00		.

करनाल के आस–पास 2001–2002 में किसानों के खेत पर चार अलग–अलग मॉडल के ट्रैक्टरों जैसे फोर्ड 3600, एसकार्ट, महेन्द्रा 265 डी. आईं तथा महेन्द्रा 575 डी. आई प्रयोग में लाकर परिचालन परिमाण का परीक्षण किया गया। यह ट्रैक्टर 30 से 46 एच.पी. के थे। ट्रैक्टर चलाने की औसत गति ज़ीरो जुताई में 4.87 कि. मी. प्रति घण्टा (सारणी–3) तथा परम्परागत विधि से तैयार खेत में 4.90 कि. मी. प्रति घण्टा थी। परम्परागत विधि से तैयार खेत को 8 से 10 बार ट्रैक्टर चला कर तैयार किया गया था। ज़ीरो तथा परम्परागत तैयार खेत में केवल बुआई करने में डीजल की खपत क्रमशः 6.48 तथा 5.21 लीटर प्रति हैक्टर थी तथा क्रमशः 179.04 एवं 147.68 रूपये प्रति हैक्टर था। इसके अतिरिक्त परम्परागत विधि से खेत तैयार करने का औसत खर्च 1500 रूपये था।

खेत की तैयारी के उपरांत छिट्टे या ड्रिल एवं ज़ीरो जुताई से गेहूँ बुआई के खर्च का हिसाब लगाने पर पाया गया कि सबसे अधिक छिट्टे (रूपये 1637) से गेहूँ की बुआई के लिए लगा इससे कम ड्रिल (1413 रूपये) तथा सबसे कम (179 रूपये) ज़ीरो जुताई तकनीक में खर्च आया (सारण ी–4)। जुताई तकनीकों में ऊर्जा की आवश्यकता 20279 एम. जे./है. ज़ीरो जुताई से लेकर 23631 एम. जे./है.। छिट्टे से गेहूँ बुआई में पाई गई। सब से अधिक लाभ:खर्च अनुपात ज़ीरो जुताई में तथा सबसे कम छिट्टे से बुआई में पाया गया जबकि ऊर्जा खर्च प्रति कि. ग्रा. पैदावार ज़ीरो जुताई

lkj.kh 3- xgw¡ cqvkbZ d¢ fy, thjk fVy fMªy d¢ thjk ,o ijEijkxr fofèk l¢ r¨;kj [k¢r e¢ ifjpkyu ifjek.k

Øe	ifjek.k	thjk tqrkbZ	ijEijkxr
1	चलने की गति, कि.मी. प्रति घंटा	4.87	4.90
2	चलने की गहराई, सें.मी.	7.29	5.34
3	मशीन की चौड़ाई, मी.	1.85	1.85
4	चालक चौड़ाई, मी.	1.88	1.88
5	ईन्धन खपत ली. प्रति घंटा ली. प्रति हैक्टर	3.81 6.48	3.41 5.21
6	क्षमता, हैक्टर प्रति घंटा घंटा प्रति हैक्टर	0.60 1.73	0.66 1.53
7	खेत क्षमता, प्रतिशत	65.79	77.16
8	मजदूर, घंटा/हैक्टर	2.23	2.03
9	व्यय, रूपये/हैक्टर	179.04	147.68

में सबसे कम तथा परम्परागत विधि से खेत तैयार करने के बाद छिट्टे से बुआई में सबसे अधिक पाया गया।

Lkj.kh 4- thjk rFkk ijEijkxr tqrkbZ e¢ Åtk ,o [kpZ dk y¢[kk&t¨[kk ¼2001&02½

ifjek.k	thjk	IkjEijkxr fMªy	ijEijkxr fNVVk
ऊर्जा एम. जे./है.	20279	23136	23631
जुताई खर्च, रू/है.	179	1413	1637
पैदावार, गेहूँ , कु./है.	56	56	54
भूसा, कु./है.	88	91	87
आय, रू/है.	43251	43732	42425
व्यय रू/है.	26023	27578	27860
शुभ लाभ, रू/है.	17228	16154	14545
आय व्यय अनुपात	1.66	1.59	1.52
स्पेसीफिक ऊर्जा, एम. जे./है.	1.41	1.58	1.68

thjk tqrkbZ dk eY;kdu

ज़ीरो जुताई तकनीक का परम्परागत विधि की तुलना में अनुसंधान फार्म तथा किसानों के खेतों पर जहां परम्परागत विधि से खेत तैयार करके ड्रिल व छिट्टे से गेहूँ बुआई की जाती है का मूल्यांकन किया गया। ज़ीरो जुताई तकनीक का फसल व भूमि पर जो प्रभाव पड़ता है उसे नीचे दिया गया है।

फसल पर प्रभावः ड्रिल से ज़ीरो जुताई तथा परम्परागत विधि से खेत तैयार करके गेहूँ की बुआई का मूल्यांकन किसानों की छिटटे से बुआई की विधि की तुलना में किया गया। चित्र–1 में दर्शाये गये आंकड़े 12 खेतों का औसत है। किसानों की परम्परागत छिट्टे से बोने की तुलना में ड्रिल से बीज व खाद बोने से 9 से 11 प्रतिशत अधिक पैदावार में लाभ मुख्यतः अच्छी एवं एक समान फसल जमाव तथा खाद को बीज के नीचे डालने से उसकी अच्छी उपलब्धता के कारण पाया गया। इसके अतिरिक्त ज़ीरो जुताई से बोई गई गेहूँ पहले पानी के बाद पीली भी नहीं पड़ती तथा यह परम्परागत विधि की तुलना में गिरती भी बहुत कम है। इन तीनों तरीके से गेहूँ बोने में यदि हम ऊर्जा की आवश्यकता पर नजर डालें तो पायेंगे कि सबसे ज्यादा ऊर्जा किसानों द्वारा छिट्टे से गेहूँ बोने में लगती है। इससे कम परम्परागत विधि से खेत तैयार करने के बाद ड्रिल से बुआई करने में तथा ज़ीरो जुताई में सबसे कम ऊर्जा की आवश्यकता, जिसमें लगभग 12 प्रतिशत की बचत भी होती है। ज़ीरो जुताई से किसानों को लाभ भी अधिक होता है जो 14545 रूपये से बढ़कर 17228 रूपये यानि लगभग 18 प्रतिशत अधिक (सारणी–4) होता है।

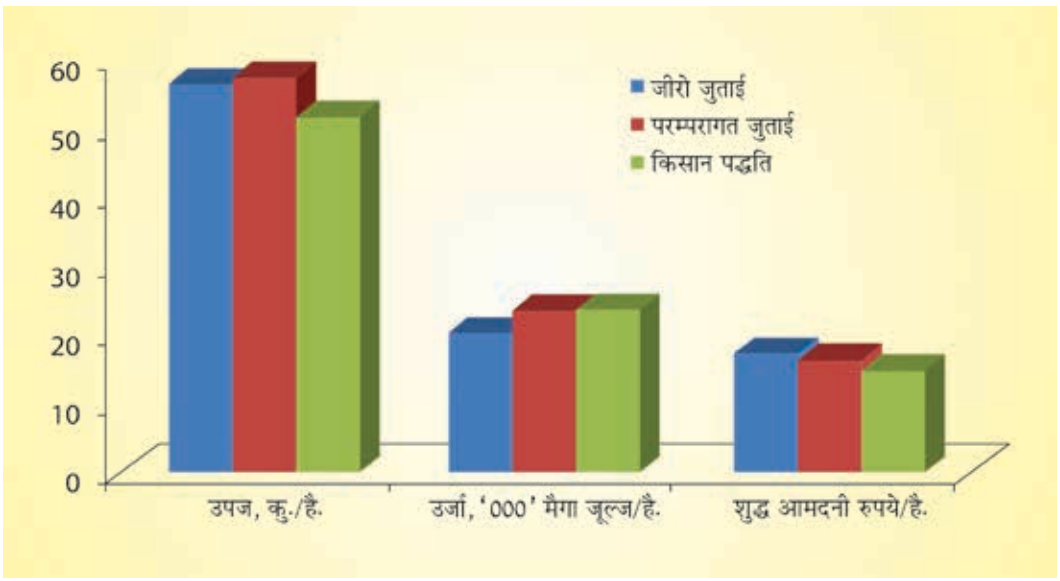

चित्र–1. विभिन्न जुताई पद्धतियों में गेहूँ की पैदावार, ऊर्जा खर्च एवं शुद्ध लाभ।

भूमि पर प्रभावः यह देखा गया है कि ज़ीरो जुताई से मिट्टी के घनत्व में वृद्धि होती है तथा पोर स्पेस खासकर बड़े छिद्र कम होते हैं। लम्बे समय तक ज़ीरो जुताई अपनाने से आर्गेनिक कार्बन में वृद्धि हो सकती है क्योंकि इसमें धान की पराली को पूरा जलाया नहीं जाता। पानी को सोखने की क्षमता भी इसमें परम्परागत जुताई की तुलना में अधिक हो जाती है लेकिन यदि धान की सारी पराली को जलाया तो पानी को सोखने की क्षमता में कमीं भी आ सकती है। धान की गड़ी हुई पराली भूमि के तापमान को भी सामान्य यानि कि सर्दियों में अधिक एवं गर्मियों में कम रखती है। ज़ीरो जुताई से छोटे छिद्र बढ़ जाते हैं इसलिए भूमि में अधिक पानी जकड़ कर रखने की क्षमता हो जाती है।

खरपतवार नियन्त्रणः किसानों के खेतों पर लगाये गये प्रयोगों में जुताई का खरपतवारों पर भी प्रभाव पाया गया। ज़ीरो जुताई में परम्परागत जुताई की तुलना में मंडूसी के पौधों की संख्या तथा उनका शुष्क भार भी कम पाया गया (सारणी–5)। इसका मुख्य कारण मिट्टी की कम से कम ऊथल–पुथल होती है जिसके कारण मंडूसी के अधिकतर बीज गहराई में ही रहने के कारण कम उग पाते हैं। बिना खरपतवार नियन्त्रण के सबसे अधिक पारम्परिक जुताई में हानि हुई। इससे कम मेंड़ पर तथा सबसे कम हानि ज़ीरो जुताई में पाई गई। इसलिए ज़ीरो जुताई एक कम खर्च तथा लम्बे समय तक खरपतवार नियन्त्रण प्रणाली हो सकती है। पारम्परिक जुताई में खरपतवार व गेहूँ में प्रतिस्पर्धा के कारण गेहूँ के 1000 दानों के भार पर भी बुरा प्रभाव अनुभव किया गया।

lkj.kh 5- t|rkbl fofèk rFkk [kjirokj fu;U=.k dk xsg| ij izHkko

जुताई विधि	पैदावार कु./है.		खरपतवार शुष्क भार ग्राम/वर्ग मी.	1000 दाना भार, ग्राम		खरपतवार संख्या प्रति वर्ग मी. बुआई के 30 दिन बाद
	खरपतवार युक्त	खरपतवार मुक्त		खरपतवार युक्त	खरपतवार मुक्त	
परम्परागत	21.14	55.75	370	40.06	44.72	377
ज़ीरो	41.78	54.91	135	41.20	44.55	118
मेंड़	33.21	49.16	149	42.20	43.23	240

thjk t|rkbl dh lHkkouk;] èkkj.kk;s ,o lPpkbl;k

कुछ वैज्ञानिकों का मत है कि ज़ीरो जुताई से 25 प्रतिशत तक पानी की बचत होती है। इसके पक्ष में वह यह तक्र देते हैं कि बुआई से पहले लगाई जाने वाली सिंचाई की ज़ीरो जुताई में आवश्यकता नहीं होती। इस चक्र में कोई दम नहीं है क्योंकि ऐसी स्थिति में जहां नमी ठीक–ठाक हो बिना सिंचाई ही खेत एक दो दिन में तैयार करके बुआई की जा सकती है। समय की बचत (7 से 10 दिन) भी तभी होती है यदि सिंचाई के बाद सामान्य नमीं आने पर खेत की तैयारी करनी पड़े जिसे अक्तूबर के अन्त में तथा नवम्बर के शुरू में लगभग एक सप्ताह लग जाता है। गेहूँ अनुसंधान निदेशालय में किये गए प्रयोगों में पाया गया कि ज़ीरो तथा परम्परागत पद्धति में पानी की

आवश्यकता में बहुत ही कम अन्तर है। अलग–अलग जुताई पद्धतियों में पानी की आवश्यकता पर विस्तार से अनुसंधान करने की आवश्यकता है।

कुछ वैज्ञानिक मानने को तैयार नहीं हैं लेकिन यह एक सच्चाई है कि ज़ीरो जुताई में चूहों द्वारा फसल को अधिक नुकसान पहुँचता है। इसका कारण यह है कि परम्परागत विधि से तैयार खेत में चूहों के बिल नष्ट हो जाते हैं तथा चूहे बिलों में ही घुटकर या हैरो आदि से कटकर मर जाते हैं तथा थोड़े बहुत चूहे जो नालियों या मेड़ों में बचते हैं वहीं हानि पहुंचाते हैं। जबकि ज़ीरो जुताई में चूहों के बिल ज्यों के त्यों बने रहते हैं जिससे चूहों की संख्या अधिक रहती है।

किसानों के खेतों पर यह भी पाया गया कि धान के कीट जैसे गुलाबी छेदक गेहूँ के पौधों को भी ज़ीरो जुताई में कभी–कभार हानि पहुँचाते पाया गया है इसलिए हमें कीड़े–मकोड़ों तथा बिमारियों के बारे में भी सजग रहना होगा।

ज़ीरो जुताई में मंडूसी सामान्यतः परम्परागत जुताई के मुकाबले कम होती है। लेकिन तीन–चार सालों तक लगातार ज़ीरो जुताई अपनाने से जंगली पालक तथा मालवा जैसे चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों का प्रकोप बढ़ जाता है। ज़ीरो जुताई का मंडूसी तथा दूसरे खरपतवारों तथा उनमें कोई बदलाव यदि है तो उनके दूरगामी प्रभावों के बारे में भी हमें सजग रहना होगा।

ज़ीरो जुताई में आरम्भिक अनुसंधान मिट्टी का घनत्व बढ़ने तथा पोर स्पेस व पानी सोखने की क्षमता में कमीं आने के संकेत देते हैं। यह स्थिति जिन खेतों से धान की पराली पूरी तरह से निकाली जाती है जैसे कि हाथ से कटाई या फिर पराली को मशीन से काट कर पूरी तरह से जलाया जाता है हो सकती है। लेकिन जहाँ कम्बाईन से कटाई के बाद सिर्फ बिखरी हुई पराली ही निकाली या जलाई जाती है वहाँ स्थिति शायद इसके बिल्कुल ही विपरीत हो जिस पर अनुंसधान आवश्यक है। इसके अतिरिक्त क्योंकि धान की फसल उगाने के लिए हम जुताई तथा कटाई उसी तरह करते हैं इसलिए मिट्टी के घनत्व आदि में शायद थोड़ा बहुत ही बदलाव आये। दूसरी तरफ ज़ीरो जुताई में हम जो गड़ा हुआ पराल छोड़ देते हैं वह मल्च का काम करता है तथा मिट्टी की भौतिक दशा सुधारने में भी उसके दूरगामी परिणाम हो सकते हैं।

ज़ीरो जुताई में सतह पर छोड़ा हुआ पराल नमीं तथा मिट्टी संरक्षण में भी सहायक होता है। इसके अतिरिक्त ज़ीरो जुताई में सतह पर छोड़े हुए पराल के कारण खरपतवार भी बहुत कम आते

हैं। लगातार ज़ीरो जुताई विशेषतः फसल चक्र परिवेश में लाभदायक कीड़े–मकोड़ों जैसे केंचुओं की संख्या में भी वृद्धि करने में सहायक होती है।

भूमि के घनत्व में वृद्धि से पानी व हवा में कमीं आने की आशंका सूक्ष्म कृमियों में कमीं ला सकती है तथा फसल को भी हानि पहुँचा सकती है। लेकिन आरंभिक नतीजे दर्शाते हैं कि ज़ीरो जुताई में पारम्परिक पद्धति से अधिक नमी रहती है। यह भी देखा गया है कि वर्षा या पहली सिंचाई के बाद गेहूँ केवल पारम्परिक पद्धति में ही पीली पड़ती है तथा ज़ीरो जुताई में नहीं। इसलिए यह जानने के लिए कि ज़ीरो जुताई से भूमि पर पारंपरिक पद्धति की तुलना में क्या प्रभाव पड़ता है विस्तार से अनुसंधान की अवश्यकता है।

गेहूँ की सभी प्रजातियाँ शायद ज़ीरो जुताई के लिए उपयुक्त न हो। लम्बी कोलियोप्टाईल वाली प्रजातियां शायद ज़ीरो जुताई के लिए छोटी कोलियोप्टाईल वाली प्रजातयिों से अच्छी रहें। इसलिए ज़ीरो जुताई के लिए प्रजातियों का अवलोकन तथा नई प्रजातियाँ विकसित करने के लिए सुचारू रूप से प्रयास करने की आवश्यकता है।

ज़ीरो जुताई पद्धति को अन्य फसल चक्रों, जैसे कि कपास–गेहूँ, बाजरा–गेहूँ, मक्का–गेहूँ तथा सोयाबीन–गेहूँ आदि में भी अपनाये जाने की क्षमता एवं आवश्यकता है। गेहूँ अनुसंधान निदेशालय प्रक्षेत्र में 10 से अधिक वर्षों के नतीजे उत्साहवर्धक हैं लेकिन इसका किसानों के खेतों पर भी लम्बे समय तक अवलोकन आवश्यक है।

lkjk'k

गेहूँ उगाने के लिए ज़ीरो जुताई तकनीक ने वर्ष 2000 की तुलना में 92 प्रतिशत से अधिक डीजल, 88 प्रतिशत से अधिक समय तथा 90 प्रतिशत से अधिक जुताई खर्च कम करके एक क्रान्ति ला दी है। इस तकनीक में किसानों की छिट्टे से गेहूँ बोने की तकनीक के मुकाबले पैदावार में लगभग 10 प्रतिशत की वृद्धि भी पाई गई है। इसके अतिरिक्त यह तकनीक पर्यावरण सहायक भी है क्योंकि इसमें कम डीजल प्रयोग होने के कारण 135 किलोग्राम प्रति हैक्टर कम कार्बन डाई ऑक्साइड पैदा होती है। यदि हम यह माने कि प्रति लीटर डीजल जलाने से 2.6 किलोग्राम कार्बन डाई ऑक्साइड निकलती है। इसके और फायदे कम मंडूसी है लेकिन लम्बे समय तक इसके उपयोग करने में हमें यह ध्यान रखना होगा कि कहीं इससे दूसरे खरपतवारों, कीड़े–मकोड़ों तथा बिमारियों को तो बढ़ावा तो नहीं मिल रहा है।

टिकाऊ फसल उत्पादन और अधिक संसाधन उपयोग दक्षता के लिए संरक्षण खेती

rkil dqekj nkl ,oa lhek lqiV

lL; foKku lHkkx] Hkkjrh; Ñf"k vuqlèkku lLFkku] ubZ fnYyh-110012

lkjka'k

धान–गेहूँ की फसल प्रणाली भारत में 10.5 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में की जाती है। यह फसल प्रणाली देश के कुल खाद्यान्न में 40 प्रतिशत योगदान करती है। यह फसल प्रणाली करोड़ों लोगों को जीविका व खाद्य सुरक्षा प्रदान करती है। धान–गेहूँ फसल–चक्र में परम्परागत उत्पादन प्रणाली से कई तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है जिसमें कुल उत्पादकता में कमी, श्रमिकों की मजदूरी में बढ़ोत्तरी, डीजल की कीमतों में वृद्धि से खेती के शुद्ध लाभ में कमी आदि प्रमुख हैं। सिंचाई के जल की कमी व बदलते हुए वातावरण में खाद्यान्न सुरक्षा एक चिन्तनीय विषय बन गई है।

परम्परागत खेती में धान रोपण अत्यधिक मृदा कर्षण व जुताई के बाद किया जाता है। यह धान व गेहूँ फसल–चक्र को अस्थिर बना रहा है। धान में अत्यधिक कद्दू करने से मृदा के खेत पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है जिससे गेहूँ की फसल की जड़ों का विकास नहीं हो पाता है जिसके कारण गेहूँ की कम उपज मिल पाती है। भारत के मैदानी इलाकों में धान के बाद गेहूँ की बुआई करने से जुताई के कारण 10–15 दिन तक की देरी हो जाती है लेकिन शून्य जुताई करने से गेहूँ को धान के तुरंत बाद उगाया जा सकता है। देर से बुआई होने के कारण बढ़ते हुए तापमान में गेहूँ का दाना सिकुड़कर रह जाता है। यह समस्या संसाधन संरक्षण तकनीकियों के उपयोग से कम की जा सकती है जिसका मुख्य उद्देश्य मृदा, जल, पोषक तत्वों का संरक्षण व फसल प्रणालियों को लम्बे समय तक स्थिर रख कर लाभ कमाना है।

iLrkouk

देश में 1960 के दशक में हरित क्रान्ति आई तो फसलों के उत्पादन में बेतहाशा वृद्धि होने से देश खाद्यान्न के मामले में आत्म निर्भर हो गया। हरित क्रान्ति के दौरान धान और गेहूँ की फसलों पर ज्यादा ध्यान दिया गया। फसल उत्पादन में नवीनतम प्रजातियों, सिंचाई जल, खाद व रासायनिक उर्वरकों तथा कृषि रसायनों का भरपूर प्रयोग किया गया। उत्पादन बढ़ाने के लिए खेती में संसाधनों का अत्यधिक और अनुचित प्रयोग किया गया जिसके परिणामस्वरूप आज स्थिति यह है कि हमारे संसाधनों की गुणवत्ता और मात्रा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। 1970 के दशक में फसल उत्पादन के

प्रति कि.ग्रा. एन.पी.के. का 15 कि.ग्रा. खाद्यान्न उत्पादन था वहीं 20 के दशक में 6 कि.ग्रा. रह गया है। भारत की बढ़ती हुई आबादी के लिए अनुपजाऊ मृदा से खाद्यान्न उत्पादन करना एक बड़ी ही चिन्ता का विषय है। इन सबके चलते आज कई तरह की समस्याएं हमारी खेती में आ गयी हैं जिनमें प्रमुख हैं फसलों की पैदावार और गुणवत्ता में निरंतर गिरावट और मृदा में पोषक तत्वों की कमी व साथ ही मिट्टी, जल और वायु में कई तरह के विषैले पदार्थों की उपस्थिति भी चिन्ता का विषय है। जल उत्पादन दक्षता 40 प्रतिशत से कम है व साथ ही साथ मृदा के स्वास्थ्य में गिरावट आंकी गई है। कई सूचक जैसे कार्बन, मृदा में जीवाणु विविधता फसल द्वारा एन.पी.के. लेने में व उर्वरकों द्वारा एन.पी.के. देने में 10 से 12 मिलियन टन अन्तराल पाया गया है साथ ही साथ सूक्ष्म तत्वों की कमी भी निरन्तर पाई जा रही है।

टर्बो सीडर से बोई गई गेहूँ की फसल

इसके अलावा किसानों की आय में भारी कटौती सबसे प्रमुख है। इन सब समस्याओं के चलते, अब हम यह सोचने पर मजबूर हो गये हैं कि संसाधनों का अत्यधिक, अंधाधुंध और अनुचित दोहन ज्यादा समय तक नहीं चल सकता वरना आने वाली पीढ़ियों का अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। यह समस्या संसाधन संरक्षण तकनीकियों के उपयोग से कम की जाती है जिसका मुख्य उद्देश्य मृदा, जल, पोषक तत्वों का संरक्षण व फसल प्रणालियों को लम्बे समय तक स्थिर रखकर लाभ कमाना है।

l lkèku lj{k.k rduhfd;k

संरक्षण कृषि का वैश्विक स्तर पर 116 मिलियन है. क्षेत्र आता है। संरक्षण कृषि के तीन मुख्य सिद्धांत हैं; 1 कम से कम मृदा का कर्षण या जुताई, 2 फसल अवशेषों द्वारा मृदा को ढक कर रखना, 3 फसल विविधीकरण। शून्य जुताई से मृदा का कर्षण कम होता है व श्रम, ईंधन व मशीन की आवश्यकता में कमी आती है इससे मृदा के कार्बन में बढ़ोत्तरी होती है। फसल अवशेषों के द्वारा मृदा की सतह को ढक कर रखा जाता है इससे जल व वायु अपरदन कम होता है व जल निकास क्षमता में बढ़ोत्तरी होती है। यह तापमान को भी नियंत्रण में रखता है व जीवाणुओं की मात्रा में बढ़ोत्तरी करता है। फसल विविधीकरण से फसल उत्पादन में स्थिरता बनी रहती है। फसलों के चक्रीकरण से फसलों व किस्मों के विविधीकरण से लम्बे समय तक अधिक आय प्राप्त होती है। संसाधन संरक्षण तकनीकियाँ फसल उत्पादन, संसाधन व उपयोग दक्षता को बढ़ाती हैं इनमें मुख्यत; लेजर विधि द्वारा भूमि समतलीकरण, शून्य जुताई, मेंड़ों पर बुआई, भूरी खाद, फसल–चक्र व विविधीकरण शामिल हैं। संसाधन संरक्षण तकनीक से मृदा के स्वास्थ्य में पोषक तत्वों व जल की क्षमता में लम्बे समय तक स्थिरता बनी रहेगी ।

1-1 y:tj fofèk }kjk Hkfe dk lerryhdj.k

संसाधन संरक्षण संबंधी तकनीकी जैसे कि बिना जुताई की खेती या मेंड़ों पर बुआई के लिए सबसे जरूरी बात यह है कि खेत पूरी तरह से समतल होना चाहिए अन्यथा बुआई ठीक से नहीं हो पाती है। बीज मिट्टी में सही गहराई पर नहीं पहुंचने से बीजों का अंकुरण एक समान रूप से नहीं हो पाता है। खाद व पानी भी सभी पौधों को समान रूप से उपलब्ध नहीं हो पाते हैं। वास्तव में किसी संसाधन संरक्षण संबंधी तकनीक की सफलता खेत के समतल होने पर निर्भर करती है। लेजर विधि एक नई वैज्ञानिक तकनीक है जिसमें एक विशेष उपकरण द्वारा खेत की मिट्टी को पूरी तरह समतल किया जाता है। समतल भूमि पर फसल उगाने का सबसे बड़ा फायदा पानी की बचत व अधिक फसल उत्पादकता का है। सिंचाई का पानी खेत के हर हिस्से में एक समान मात्रा में और सारे खेत में कम समय में फैल जाता है। धान की फसल के लिए तो यह बहुत ही उपयोगी है जिसमें सिंचाई जल की मात्रा लगभग आधी हो जाती है। आजकल किसानों द्वारा इस तकनीक में रूचि दिखायी जा रही है। इस मशीन की लोकप्रियता दिनोदिन बढ़ती जा रही है। किसानों के बीच यह मशीन 'कम्पयूटर' के नाम से प्रचलित है। ये मशीने काफी मंहगी हैं। परंतु छोटे व सीमांत किसानों की जरूरतों को पूरा करने के लिए ये आसानी से किराये पर उपलब्ध हो जाती हैं।

1-2 Lkhèkh c|vkbl èkku

लगातार धान–गेहूँ फसल–चक्र से जल स्तर में निरंतर कमी, मृदा की संरचना व उर्वक दक्षता में ह्रास व गुल्ली–डंडा का गेहूँ में प्रकोप व साथ ही साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों जिनमें मुख्यत सल्फर, जस्ता, बोरोन, मोलिब्डेनम, लोहा की कमी भी देखी गई है। सीधी बुआई वाले धान में पानी की आवश्यकता कम होती है व मृदा की संरचना में, व ग्रीन हाउस गैस उत्सर्जन में भी कमी आती है।

सीधी बुआई द्वारा धान की बुआई दो तरीकों से की जाती है; सूखी सीधी बुआई विधि व गीली बुआई विधि। सीधी धान की बुआई में बीजों की मृदा में कतार में बुआई की जाती है व गीली विधि में अंकुरित बीजों का छिड़काव पडलिंग मृदा में किया जाता है। यह श्रम, ईंधन व जल को बचाता है (चित्र न. 1 व 2) (सारणी 1)। रोपाई वाले धान या पडलिंग वाले धान के बदले इसमें खरपतवार नियंत्रण काफी मुश्किल है। मूंग का धान–गेहूँ प्रणाली में समावेश से और हरी खाद के प्रयोग से मृदा में जीवाणुओं व एंजाइम की बढ़ोत्तरी होती है जिससे कार्बन की मात्रा बढ़ती है और लोहा, जस्ता की

मात्रा में बढ़ोत्तरी होती है। यद्यपि यह क्रिया किसानों में ज्यादा प्रचलित नहीं है क्योंकि इसमें कोई आय का स्त्रोत नहीं है अत; मूंग का गेहूं की कटाई के उपरान्त उगाने से न केवल 0.6 से 0.8 टन/है. उपज प्राप्त होती है बल्कि 3–4 टन मूंग अवशेष को आने वाले धान में डालने से भी 30 से 40 कि.ग्रा. नत्रजन की बचत की जाती है (चित्र न. 3)।

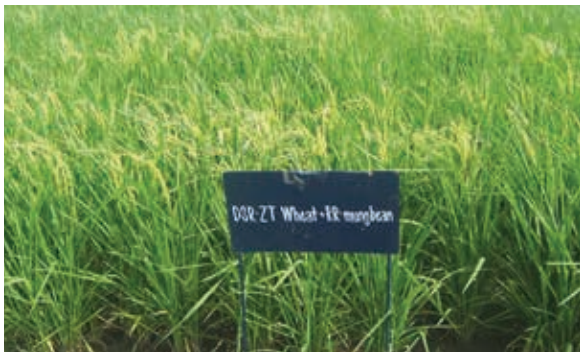

चित्र 1. सीधी बुआई धान मूंग अवशेष के साथ (धान अवशेष + शून्य जुताई गेहूँ– ग्रीष्मकालीन मूंग के बाद)

चित्र 2. शून्य जुताई गेहूँ धान अवशेष के साथ–(मूंग अवशेष + सीधी बुआई धान के बाद)

चित्र 3. ग्रीष्मकालीन मूंग (मूंग अवशेष + सीधी बुआई धान –धान अवशेष +शून्य जुताई गेहूँ के बाद)

Lkkj.kh 1- èkku&xsgw¡ Qly&pØ esa lwj{k.k [ksrh dh rduhdksa dk izHkko

Rkduhd	èkku dh inkokj ¼Vu@gs-½	xsgw¡ dh inkokj ¼Vu@gs-½	nkuk Qlyksa dh xsgw¡ ds rqY;kad inkokj ¼Vu@gs-½	'kq) ykHk ¼:@gs- gtkj esa½	ty mRikndrk ¼fd-xzk- xsgw¡@gs-&fe-eh-½
सीधी बुआई धान–धान फसल अवशेष + शून्य जुताई गेहूँ	5.18	5.08	11.13	103.72	7.93
मूँग अवशेष + सीधी बुआई धान –धान फसल अवशेष + शून्य जुताई गेहूँ –मूँग	5.61	5.23	11.78	113.94	8.60
धान रोपाई– शून्य जुताई द्वारा गेहूँ	5.75	4.97	11.68	98.49	5.45
धान रोपाई–सामान्य बुआई गेहूँ	5.57	4.90	11.40	94.16	5.20

1-3 'kU; t|rkb| dh [krh

इस तकनीक द्वारा खेतों की बिना जुताई किये जीरो सीड ड्रिल द्वारा फसलों की बुआई की जाती है (चित्र न. 4)। जहां बीज की बुआई करनी हो, उसी जगह से मिट्टी को न्यूनतम खोदा जाता है। इसमें दो लाइनों के बीच की जगह बिना जुती ही रहती है। बुआई के समय ही आवश्यक उर्वरकों की मात्रा बीज के नीचे डाल दी जाती है। इस तरह की बुआई मुख्यतः रबी फसलों जैसे गेहूँ, चना, सरसों और अलसी में ज्यादा कामयाब सिद्ध हुई है। इन फसलों की बुआई देरी की अवस्था में 7–10 दिन पहले यानि कि समयानुसार की जा सकती है। अतः इस तकनीक द्वारा बुआई करने पर देरी से बोयी गयी फसलों में होने वाले नुकसान को बचाया जा सकता है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली के अनुसंधान फार्म पर किये गये प्रयोगों में बिना जुताई से बोयी गयी फसलों की पैदावार 5–10 प्रतिशत अधिक पायी गई है। साथ ही बिना जुताई द्वारा बुआई करने में लागत कम आती है क्योंकि किसान बुआई के पूर्व खेत की 3–4 बार जुताई करते हैं जिसके कारण होने वाला खर्च बच जाता है। साथ ही ट्रैक्टर के रख–रखाव पर भी कम लागत आती है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि रबी फसलों की बुआई में 2500–3000 रूपये प्रति हैक्टर का खर्च बचाया जा सकता है। इस तकनीक से बुआई करने पर पानी की मात्रा भी कम लगती है क्योंकि एक तो पलेवा यानि बुआई–पूर्व सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती है। इसके अलावा बाद में भी 1–2 सें.मी. प्रति सिंचाई पानी कम लगता है। यह भी पाया गया है कि बिना जुताई वाले खेतों में खरपतवारों का कम प्रकोप होता है। इसका कारण यह है कि इस तकनीक में मिट्टी की ज्यादा उलट–पुलट नहीं करते हैं। अतः जिन खरपतवारों के बीज मिट्टी की गहरी सतह में होते हैं उन्हें अंकुरण के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं मिल पाता है। इसी प्रकार मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ और उसके ऊपर निर्भर लाभकारी सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है जो कि पारंपरिक बुआई के तरीके में खेतों की बार–बार जुताई करने पर नष्ट हो जाते हैं। इस तरह मृदा की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने में भी यह तकनीक सार्थक मानी गयी है। धान की रोपाई सामान्यत; मानसून के देरी से आने या सिंचाई की देरी से होने पर या श्रमिकों के अभाव में देरी से होने पर धान की कटाई भी देरी से हो पाती है जिससे गेहूँ की बुआई भी देरी से हो पाती है। गेहूँ की देरी से बुआई होने पर 32 से 35 कि.ग्रा. प्रतिदिन उपज में कमी होती। ऐसी हालत में धान की कटाई से पहले पानी देना चाहिए जो गेहूँ के लिए बुआई से पहले दिए गए पलेवा का काम करता है। परम्परागत जुताई की अपेक्षा शून्य जुताई, गेहूँ की बुआई करनी चाहिए इससे 50–60 लीटर डीजल/है. बचत होगी तथा व गुल्ली–डंडे

चित्र 4. जीरो सीड ड्रिल (टर्बो सीडर)

का प्रकोप कम होता है। इसके लिए जीरो सीड ड्रिल मशीन है जिससे बीज व खाद की एक साथ बुआई की जाती है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान में सरंक्षण खेती की तकनीक पर बड़े पैमाने पर प्रयोग किये गये हैं। यह प्रयोग मुख्यतः धान–गेहूँ, मक्का–गेहूँ, कपास–गेहूँ, अरहर–गेहूँ व सोयाबीन–गेहूँ फसल चक्रों में किये गये हैं। इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि धान की सीधी बुआई वाली फसल की कटाई उपरांत यदि गेहूँ की बुआई शून्य जुताई तकनीक द्वारा की जाती है तथा गेहूँ की कटाई के तुरंत बाद गर्मियों में मूंग की फसल ली जाती है तो सभी फसलों की पैदावार और शुद्ध लाभ परंपरागत विधि से धान–गेहूँ के फसल–चक्र की अपेक्षा अधिक प्राप्त किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त सीधी–बुआई द्वारा धान उगाने से 30–40 प्रतिशत सिंचाई जल की बचत की जा सकती है (सारणी–1)। इस तकनीक का फसलों की पैदावार पर भी कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता है।

शून्य जुताई वाली खेती में कुछ सावधानियाँ और मुश्किलें भी हैं। एक तो बुआई के समय मिट्टी में पर्याप्त नमी होनी चाहिए ताकि मिट्टी और बीज का संपर्क अच्छी तरह हो जाए। दूसरी बुआई के समय ज्यादा सावधानी रखने की जरूरत होती है कि कहीं सीड ड्रिल की पाइपें बंद न हो जाएं। यद्यपि सीड ड्रिल की पाइपें पारदर्शी होती हैं उनसे बीज गिरता हुआ स्पष्ट नजर आता है। खरपतवारों के नियंत्रण में भी ज्यादा सावधानी की जरूरत होती है। इसके लिए बुआई से पहले पेराक्वाट अथवा ग्लाईफोसेट नामक खरपतवारनाशी का प्रयोग करना चाहिए जिससे पहले से उगे हुए सारे खरपतवार नष्ट हो जाएं। कुछ भारी जमीनों में पौधों की जड़ों की वृद्धि कम हो सकती है। इसके लिए मिट्टी पर फसल अवशेषों या अन्य वनस्पतिक पदार्थों की परत डालने से पौधों की जड़ों और विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

1-4 eM+ ij [kjh

इस तकनीक में फसलों की बुआई मेंड़ों पर करने के लिए एक यन्त्र तैयार किया गया है। इस तकनीक में 70–75 से.मी. की दूरी पर मेंड़ें बनाई जाती हैं जिसमें लगभग 35 सें.मी. चौड़ी मेंड़ और इतनी ही दूरी व गहराई पर नाली सी बन जाती है। बुआई मेंड़ों पर और नाली में भी फसल के अनुसार की जा सकती है। गेहूँ के लिए मेंड़ों पर 3 लाइनें बोई जा सकती हैं जबकि सोयाबीन, सरसों, चना, मूँग की दो लाइनें काफी होती है (चित्र न. 5, 6 व 7)। यह तकनीक खेतों की भली–भाँति जुताई करने के बाद या फिर पिछली फसल के लिए बनायी मेंड़ों पर बिना जुताई के भी अपनाई जा सकती है। इस विधि से बुआई करने के कई लाभ हैं। जैसे

वर्षा ऋतु में खेतों में ज्यादा पानी खड़ा होने से मेंड़ों पर उगे पौधे ज्यादा सुरक्षित होते हैं क्योंकि अनावश्यक पानी को नालियों में से होकर बाहर निकाला जा सकता है। फसलों की सिंचाई करने पर पानी की मात्रा 20–30 प्रतिशत तक कम लगती है। साथ ही प्रति ईकाई पानी की उत्पादकता भी बढ़ती है। इस तकनीक द्वारा फसल उत्पादन में यह भी देखा गया है कि बीज और खाद की मात्रा 15–20 प्रतिशत कम लगती है क्योंकि इनका प्रयोग सिर्फ मेंड़ों पर ही किया जाता है। इस विधि में मेंड़ों पर खरपतवार भी कम आते हैं। इसका कारण यह है कि मेंड़ों पर फसल के पौधों की संख्या ज्यादा होती है जिससे खरपतवारों को पनपने का मौका नहीं मिलता है। यद्यपि नालियों में ज्यादा खरपतवार आते हैं क्योंकि फसल की आरंभिक अवस्थाओं में उनके उगने के लिए पर्याप्त जगह होती है। खरपतवारों की रोकथाम हाथ से चलाने वाले अथवा ट्रैक्टर–चलित यंत्रों द्वारा आसानी से की जा सकती है। इस प्रकार मेंड़ों पर बुआई करने से संसाधनों का कम प्रयोग होने के साथ–साथ पैदावार भी 10–15 प्रतिशत ज्यादा या फिर समतल जमीन पर बुआई करने के बराबर ही मिलती है।

कपास–गेहूँ फसल–चक्र में शून्य जुताई और मेंड़ों पर बुआई बहुत सार्थक पायी गयी है। यदि फसलों के अवशेषों को भी मिट्टी की सतह पर बिछा दिया जाए तो यह तकनीक और भी ज्यादा लाभकारी सिद्ध हुई है। जिसका मृदा नमी, कार्बनिक कार्बन की मात्रा व तापमान पर तो अनुकूल प्रभाव पड़ता ही है। साथ ही खरपतवारों की रोकथाम में भी सहायता मिलती है। संरक्षण खेती की तकनीकियों द्वारा फसलों की उपज और शुद्ध लाभ में भी बढ़ोत्तरी आंकी गयी है। इसके अलावा सिंचाई जल की उत्पादक दक्षता में भी सुधार पाया गया (सारणी 2)।

lkj.kh 2- dikl&xg Qly pØ e lj{k.k [krh dh rduhdk dk iHkko

Rkduhd	dikl dh mit ¼Vu@g-½	xg dh mit ¼Vu@g-½	nkuk Qlyk dh xg rY; mit ¼Vu@g-½	'k) ykHk ¼gtkj :@g-½	ty mRiknd rk ¼fd-xk- xg @g-&fe-eh-½
सामान्य बुआई–समतल भूमि	2.73	4.29	11.16	75.90	8.38
शून्य जुताई–संकरी मेंड़ों पर +फसल अवशेष	3.33	4.60	12.97	101.00	10.98
शून्य जुताई–चौड़ी मेंड़ों पर +फसल अवशेष	3.93	4.77	14.67	122.72	12.98
शून्य जुताई समतल भूमि +फसल अवशेष	4.00	4.44	14.50	121.25	11.62

मेंड़ों पर बुआई करने के लिए कुछ सावधानियां रखना बहुत जरूरी है। इसके लिए खेत पूरी तरह से समतल होना चाहिए। अगर अच्छी जुताई के बाद मेंड़ों पर बुआई करनी हो तो मिट्टी पूरी तरह से भुरभुरी होनी चाहिए। यदि पिछली फसल के लिए बनायी गयी मेंड़ों पर बिना जुताई के बुआई करनी हो तो खेत घास–फूस व फसल अवशेषों से रहित होना चाहिए। मेंड़ों पर बुआई करने के लिए सबसे

चित्र 5. शून्य जुताई, चौड़ी मेंड़ + फसल अवशेष के साथ कपास

चित्र 6. शून्य जुताई, चौड़ी मेंड़ + फसल अवशेष के साथ गेहूँ

चित्र 7. शून्य जुताई संकरी मेंड़ + फसल अवशेष के साथ गेहूँ

महत्वपूर्ण बात यह है कि मृदा में सही नमी होनी चाहिए अन्यथा नमी की कमी में बीजों का जमाव ठीक से नहीं हो पाता है। वाष्पीकरण होने से भी मेंड़ों की सतह पर नमी कम रह जाती है। ऐसी स्थिति में गेहूँ जैसी फसल में तो बुआई के 4–5 दिन बाद ही सिंचाई की जरूरत पड़ सकती है ।

1-5 Hkjh [kkn ¼ckmu eU;fjx½

ब्राउन मैन्यूरिंग में ढैंचा को धान के साथ 30–35 दिन के लिए उगने दिया जाता है फिर 2, 4–डी 0.4 –0.5 कि.ग्रा./है. की दर से छिड़काव किया जाता है इससे 20 से 30 कि.ग्रा नत्रजन/है. की बचत होती है व साथ ही साथ खरपतवार की मात्रा में कमी आती है ।

vU; Qly i.kkfy;k e lj{k.k [krh

संरक्षण खेती के अंतर्गत कपास–गेहूँ फसल–चक्र में अरहर–गेहूँ और मक्का–गेहूँ फसल चक्रों की अपेक्षा लगभग 1.0–1.5 गुणा ज्यादा उत्पादकता मिलती है (सारणी 3)। फसल अवशेषों के साथ मेंड़ पर बुआई करना समतल बुआई की अपेक्षा बेहतर है। साथ ही उपर्युक्त तीनों फसल

प्रणालियों के अंतर्गत फसल अवशेषों के साथ मेंड़ों पर बुआई करने से अधिक फसल उत्पादकता मिलती है।

lkj.kh 3- fofHkUu Qly i.kkfy;k e 'kU; t rkb d vrxr xg d r Y;kd i.kkyh mRikndrk

mipkj	dikl&xg ¼Vu@g-½	vjgj&xg ¼Vu@g-½	eDdk&xg ¼Vu@g-½
परम्परागत समतल बुआई	11.16	8.80	6.94
शून्य जुताई, संकरी मेंड़	12.17	8.93	6.72
शून्य जुताई, संकरी मेंड़+फसल अवशेष	12.97	9.25	7.06
शून्य जुताई, चौड़ी मेंड़	12.80	9.16	7.32
शून्य जुताई, चौड़ी मेंड़+फसल अवशेष	14.67	9.83	7.99

Lkkjk'k

आजकल पूरे विश्व में संरक्षण खेती पर बड़ा जोर दिया जा रहा है। पिछले कई दशकों से सघन खेती करने से, एक वर्ष में 2–3 फसलें और लगातार एक ही तरह की फसलें उगाने से, रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक व अनुचित प्रयोग, जैविक खादों के प्रयोग की अनदेखी करने के कारण कृषि में ज्यादा उत्पादन लागत और कम फायदा हो रहा है। संसाधनों की मात्रा और गुणवत्ता में कमी होने से आज विश्व के कई देशों में संरक्षण खेती बड़े व्यापक स्तर पर अपनाई जा रही है। विश्व में लगभग 106 मिलियन हैक्टर से ज्यादा जमीन पर संरक्षण खेती की जा रही है। संरक्षण खेती करने वाले देशों में अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, ब्राजील और अर्जेन्टीना प्रमुख हैं। इस विधि का मुख्य उद्देश्य यह है कि खेत की मिट्टी को न्यूनतम हिलाया जाए, उसकी जुताई न के बराबर की जाए, भारी मशीनों का कम से कम प्रयोग किया जाए व मृदा सतह को हर समय फसल अवशेषों या दूसरे किसी वानस्पतिक आवरणों से ढककर रखा जाए। हरी खाद या जमीन को ढकने वाली अन्य फसलों को फसल चक्र में अपनाया जाए। ऐसा करने से बहुत सारे फायदे पाये गये हैं जिनमें फसलों की पैदावार बढ़ने के साथ–साथ संसाधनों जैसे मिट्टी, पानी, पोषक तत्व, फसल उत्पाद और वातावरण की गुणवत्ता भी बढ़ी है जो कि कृषि की लगातार अच्छी हालत के लिए बहुत जरूरी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भविष्य में इसी तरह की खेती को ही अपनाना होगा ताकि हमारी भावी पीढ़ियां अपना जीवन अच्छे से निर्वाह कर सकें।

संरक्षण कृषि अपनायें और गेहूँ की पैदावार बढ़ायें

fe tkuy gd ,o chjUn dekj
lL; foKku foHkkx] fcgkj Ñf"k egkfo|ky;] lckj] Hkkxyij ¼fcgkj½

हरित क्रांति की सफलता के साथ जहाँ देश ने खाद्यान्न उत्पादन में आत्मनिर्भरता के युग में प्रवेश किया वहीं संसाधनों का अत्यधिक दोहन, उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग, गिरता हुआ मृदा जल स्तर तथा बढ़ते पर्यावरणीय विकारों ने वर्त्तमान कृषि को विचारणीय विषय बना दिया है। आज जहाँ प्रति इकाई उत्पादन लागत में वृद्धि के साथ–साथ गिरता मृदा का जीवांश स्तर, भूमि का अंतः सतही कठोरपन, खरपतवार व कीट–पतंगों का प्रकोप एवं अत्यधिक उर्जा अपव्यय एक गंभीर समस्या है, वहीं निरन्तर घटते कृषि जोत के साथ–साथ बढ़ती आबादी को भोजन उपलब्ध कराना कृषि वैज्ञानिकों के सामने एक बहुत बड़ी चुनौती है। इन परिस्थितियों में संरक्षण कृषि जो कि एक महत्वपूर्ण पद्धति है, जिसमें उत्पादन निरन्तरता के साथ फसल अवशेष प्रबंधन एवं फसल विविधीकरण के माध्यम से मृदा व जल स्वास्थ्य तथा वातावरण संतुलन का यथोचित समन्वय होता है।

गेहूँ का देश की खाद्यान्न सुरक्षा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान है। यह कहना भी अतिशयोक्ति न होगा कि दुनिया का भरण–पोषण करने में गेहूँ का सर्वाधिक महत्व है। विश्व के तकरीबन 43 देशों में गेहूँ की खेती मुख्य खाद्यान्न के रूप में की जाती है। भारत में गेहूँ की खेती लगभग 290 लाख हैक्टर क्षेत्र में की जाती है और कुल खाद्यान्न–उत्पादन में गेहूँ का योगदान करीब 36 प्रतिशत है। उल्लेखनीय है कि हरित क्रांति के पूर्व वर्ष 1964–65 में गेहूँ का उत्पादन मात्र 123 लाख टन या जो 2011–12 में बढ़कर 934.6 लाख टन हो गया। कहने की आवश्यकता नहीं, गेहूँ का देश की खाद्यान्न सुरक्षा में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान रहा है। गेहूँ की वांछित उपज के लिए वे सभी कारक जिन पर हम नियंत्रण पा सकते हैं, उनका सही प्रबंधन होना चाहिए। अधिक उत्पादन देने वाले बीज जो समय और स्थान विशेष के लिए उपयुक्त हों, उनके साथ उत्तम प्रबंधन पद्धति को अपनाकर गेहूँ की उत्पादकता में उल्लेखनीय वृद्धि की जा सकती है। गेहूँ की उत्पादकता में ठहराव दूर करने के लिए सर्वोत्तम प्रबंधन तकनीक अपनाना आवश्यक होगा।

बिहार राज्य में खाद्य सुरक्षा का आधार कहे जानेवाले गेहूँ का उत्पादन नए कीर्तिमान की ओर बढ़ रहा है। गेहूँ का उत्पादन इस कीर्तिमान तक पहुँचने की खास वजह गेहूँ के मुख्य उत्पादक क्षेत्रों में बिहार सरकार द्वारा एक अभियान **'कृषि वैज्ञानिक गाँव की ओर'** रही। इसमें कृषि वैज्ञानिकों के साथ राज्य के कृषि अधिकारी और किसानों ने भी हिस्सेदारी की। साथ ही मौसम भी गेहूँ की खेती के लिए अनुकूल बना रहा, जिससे उत्पादकता बढ़ाने में मदद मिली । गेहूँ अनुसंधान द्वारा गेहूँ की उन्नत किस्मों के विकास के साथ ही अधिक उत्पादनशील तकनीकें भी विकसित कर किसानों तक पहूँचायी जाती रही। इसी का परिणाम है कि वर्ष 2009 में गेहूँ के कुल क्षेत्र लगभग 2.2 मिलियन हैक्टर से करीब 5.2 मिलियन टन गेहूँ का उत्पादन बिहार राज्य में किया गया। आज गेहूँ की

उत्पादकता लगातार बढ़ रही है और यह 23.3 कुंतल/है. तक पहुँच गई है। नतीजा यह है कि अब हमारा देश भारत, गेहूँ उत्पादन में दुनिया में चीन के बाद दूसरा सबसे बड़ा देश बन गया है। देश अपनी घरेलू जरूरत पूरी करने के साथ ही गेहूँ का निर्यात करने में भी सक्षम है।

इन महत्वपूर्ण उपलब्धियों के बावजूद गेहूँ उत्पादन के सामने अनेक चुनौतियाँ भी हैं। अनुमान है कि देश की बढ़ती आबादी के मद्देनजर वर्ष 2025 तक हमें 109 मिलियन टन गेहूँ का उत्पादन करना होगा यानि आने वाले प्रत्येक वर्ष में पिछले वर्ष के तुलना में 2 मिलियन टन अधिक गेहूँ का उत्पादन करना जरूरी हो जाएगा। सच्चाई यह भी है कि गेहूँ की क्षेत्रफल में बहुत ज्यादा बढ़ोत्तरी की सम्भावना नहीं है। कहने का मतलब यह है कि प्रति हैक्टर उत्पादकता बढ़ाना जरूरी है। दूसरी ओर सिंचाई, पोषक तत्वों तथा कार्बनिक अंशों की कमी के कारण मिट्टी का उपजाऊपन भी कम होता जा रहा है। जलवायु परिवर्तन के कारण तापमान में उतार–चढ़ाव और मौसम अपदाओं की वजह से भी गेहूँ उत्पादन बढ़ाना एक गंभीर चुनौती है। पिछले वर्षों में गेहूँ उत्पादन की बढ़ोत्तरी में छोटा कद और प्रकाश प्रतिरोधित प्रजातियां, क्षेत्रफल में बढ़ोत्तरी, फसल प्रबन्धन में सुधार तथा संसाधन प्रबंधन में सुधार के कारण हुई है। गेहूँ उत्पादन में और बढ़ोत्तरी भिन्न–भिन्न राज्यों के उत्पादकता अन्तर (1.5 से 2.0 टन प्रति हैक्टर) को कम करने पर हो सकती है। इसी प्रकार वर्तमान भूमंडलीकरण के दौर में गुणवत्ता को अन्तर्राष्ट्रीय बाजार योग्य बनाना बहुत ही महत्वपूर्ण है। संसाधन प्रबंधन कार्यक्रम के गेहूँ वैज्ञानिकों ने पिछले 5.6 वर्षों में उन्नत जुताई तथा संसाधन संरक्षण तकनीकों से गेहूँ की फसल को खेत में अच्छी तरह स्थापित करने की तरफ अपने अनुसंधान कार्य तेज किये हैं और इसके अच्छे परिणाम भी मिले हैं। यह जुताई तकनीक की अलग–अलग विधियाँ उत्पादन स्थाई तौर पर बढ़ाने का अवसर प्रदान करती हैं। कम लागत वाली इन नई तकनीकों का विकास करने के बाद इन्हें किसानों के खेतों पर भी प्रदर्शित किया गया।

o|dfYid t|rkb| rduhd|

वैकल्पिक जुताई तकनीक के अन्तर्गत जीरो टिलेज, रोटरी टिलेज एवं मेंड़ पर गेहूँ उत्पादन (रेज़्ड बेड तकनीक) काफी लाभदायक पायी गयी। इन विधियों के अपने अपने लाभ एवं हानियाँ हैं और ये अलग–अलग तरह की मृदा एवं फसल चक्र के लिये उपयुक्त हो सकती हैं।

th|jk fVy|t

इस तकनीक में गेहूँ की बुआई एक विशेष प्रकार से बनाई गई बीज एवं खाद ड्रिल के द्वारा केवल एक ही बार ट्रैक्टर का प्रयोग करके की जाती है। यह बुआई बिना खेत तैयार किये सामान्य या थोड़ी ज्यादा गीलापन लिये भूमि में की जाती है जिसमें धान की कटाई के बाद बचे अवशेष भी खड़े रहते हैं। सर्वेक्षण में पाया गया कि धान के बाद अधिक बार जुताई का प्रचलन तथा धान काटने के बाद गेहूँ बुआई के लिये कम समय ने गेहूँ की उत्पादकता पर विपरीत प्रभाव डाला है।

विभिन्न क्षेत्रों में किये गये बुआई समय पर आधारित शोध कार्यों से पता चला कि गेहूँ की बुआई में देरी होने से उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र के उत्पादन में 27.6 किलोग्राम प्रति हैक्टर प्रतिदिन के हिसाब से कमी आती है। जीरो तकनीक से अच्छी पैदावार प्राप्त करने के लिये 25 प्रतिशत अधिक नत्रजन तथा परंपरागत पद्धति की तुलना में थोड़ा ज्यादा बीज की जरूरत पड़ती है।

इस तकनीक में फसल के अच्छे जमाव के लिए पहली सिंचाई बुआई के 15–18 दिन बाद कर देनी चाहिए लेकिन यह समय, मृदा प्रकार एवं वातावरण पर भी निर्भर करता है।

जहाँ धान देर से पकने के कारण गेहूँ की बुआई 25 नवम्बर के बाद हो पाती है वहां पर जीरो टिलेज का उपयोग किया जा सकता है। इसका अधिक चिकनी मिट्टी को छोड़कर सभी प्रकार की मिट्टियों में सफलतापूर्वक संभव है। यदि गेहूँ की बुआई 25 नवम्बर के पश्चात की जाय तो प्रतिदिन 30–35 किलोग्राम प्रति हैक्टर गेहूँ की उपज में कमी आ जाती है। जीरो टिलेज को अपनाकर इस नुकसान की भरपाई की जा सकती है तथा खेत की तैयारी पर होने वाले खर्च को बचाया जा सकता है। धान की खड़ी फसल में कटाई से कुछ दिन पहले सिंचाई दी जाती है। धान की कटाई के तुरंत बाद बची हुई नमी का उपयोग करके जीरो टिलेज मशीन द्वारा गेहूँ की बुआई की जा सकती है। जिससे खेत तैयार करने के लिये जो समय चाहिए उसकी बचत हो जाती है।

thjks fVyst rduhd ds ykHk

परम्परागत विधि की तुलना में जीरो टिलेज तकनीक के कई लाभ हैं जिसमें 92 प्रतिशत डीजल की बचत, जो कि 61 लीटर प्रति हैक्टर होती है, बहुत ही महत्वपूर्ण है। इस प्रकार इस पद्धति से गेहूँ उगाने में लागभग 3500 रूपये प्रति हैक्टर की कमी, विदेशी मुद्रा की बचत, 4–5 दिन गेहूँ की बुआई को आगे करना, पहली सिंचाई में पानी की बचत, मंडूसी/कनकी खरपतवार का कम प्रकोप जो कि गेहूँ की खेती में एक गम्भीर समस्या है आदि अन्य लाभ हैं। यदि डीजल की बचत को धान–गेहूँ फसल–चक्र के क्षेत्रफल जो कि 10.5 मिलियन हैक्टर है, में मापा जाय तो 640 मिलियन लीटर डीजल प्रति वर्ष की बचत होगी जो कि 200 मिलियन (जिसमें भारत सरकार द्वारा राहत शामिल नहीं है) अमेरिकी डालर प्रति वर्ष बनता है। इसके अलावा 135 किलोग्राम कार्बन डाईआक्साईड प्रति हैक्टर (2.6 किलोग्राम कार्बन डाई आक्साईड प्रति लीटर डीजल जलने पर) कम करके यह पर्यावरण को दूषित होने से भी बचाती है जो कि वातावरण में गर्मी बढ़ाने का मुख्य कारण है।

esM+ ij ¼jsTM csM½ cqvkbZ rduhd

आमतौर पर गेहूँ की बुआई 17–20 से.मी. की लाईन से लाईन दूरी पर मशीन से या फिर समतल भूमि में बीज का छिड़काव करके तथा हल्की जुताई करके पाटा लगाकर की जाती है परन्तु मेंड़ पर गेहूँ उगाने की तकनीक इससे बिल्कुल भिन्न है। भारत में यह तकनीक 1995 में मैक्सिको स्थित याकी घाटी में गेहूँ उगाने के तरीके से अपनाई गई है।

साधारणतया इसमें 70 से.मी. के मेंड़ पर गेहूँ की 2 से 3 लाईने उगाई जाती है और नालियों से सिंचाई की जाती है। पिछले कुछ वर्षों में किये गये शोध कार्य से पाया गया है कि इस तकनीक से बिना उत्पादन कम किये 25–40 प्रतिशत बीज एवं 25 प्रतिशत नत्रजन की बचत कर सकते हैं। इसके अलावा इस तकनीक से मृदा एवं मौसम के हिसाब से 25–40 प्रतिशत तक पानी की बचत भी की जा सकती है। परन्तु इस तकनीक में जल्दी–जल्दी पानी देना पड़ता है जिससे लगभग दो सिंचाईयों अधिक लगती हैं। पहली सिंचाई पूर्ण अंकुरण हेतु बुआई के 3–5 दिन बाद तथा दूसरी दाना भरने की दूधिया अवस्था पर देनी पड़ती है। किसान साधारणतया गेहूँ की अन्तिम सिंचाई फसल गिरने के डर से छोड़ देते हैं लेकिन फर्ब तकनीक में पानी नाली में रहने से पौधे के तने को कम प्रभावित करता है और फसल गिरने का डर कम रहता है। इस तकनीक में मेंड़ पर कम गीलापन होने के कारण कनकी/मंडूसी भी कम उगती है और यान्त्रिक विधि से भी मेंड़ के ऊपर एवं नीचे नालियों में खरपतवारों का नियंत्रण आसानी से कर सकते हैं। इस विधि में किसान स्वयं भी नाली में चलता हुआ आसानी से खरपतवार निकाल सकता है। इसलिये इस तकनीक में खरपतवारनाशकों पर कम निर्भर रहना पड़ता है और यह वातावरण को शुद्ध बनाने में भी सहायक है।

eM+ ij cqvkbZ ls nwljh Qly mxkuk

गेहूँ के बाद बिना खेत तैयार किये मेंड़ पर बुआई तकनीक से दूसरी फसलें भी बोई जा सकती हैं और इससे जुताई संख्या में कमी करके लागत को कम किया जा सकता है। अनुमोदित तरीकों के आधार पर बहुत सी फसलें जैसे कि मक्का, सोयाबीन, अरहर, कपास आदि को खरीफ में तथा मटर, सरसो व आलू को रबी में बोया गया तथा इनके बाद देर से बोई जाने वाली गेहूँ की किस्में लगाई गई।

आमतौर पर ये फसलें अधिक पानी को सहन करने में असमर्थ हैं तथा गिर जाती हैं। यह तकनीक इन फसलों को अधिक पानी से तथा गिरने से बचाने का अवसर प्रदान करती है। ये सभी लाभ अधिक फसल उत्पादन के लिये सहायक सिद्ध होते हैं। यही नहीं बल्कि इन फसलों के बाद बोई जाने वाली फसल को एक ही बार ट्रैक्टर चला कर बेड प्लांटर से बोई तथा साथ ही मेंड़ भी ठीक कर दी जाती है जिससे जुताई खर्च भी काफी कम हो जाता है।

फसल बदलाव एवं फसल–चक्र में शोध के आधार पर यह पाया गया की धान–मटर–गेहूँ से दूसरी फसल–चक्रों जैसे कि धान–आलू–गेहूँ या धान–गेहूँ आदि से ज्यादा लाभ (रूपये प्रति हैक्टर) प्राप्त किया जा सकता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि यह बुआई का तरीका एक ही वर्ष में ज्यादा फसलें लेने तथा भूमि का सदुपयोग करके टिकाऊ प्राप्त करने का अवसर प्रदान करता है।

eM+ ij cqvkbZ rduhd ds ykHk

- मेंड़ पर उगाई गई फसल बीज, खाद तथा पानी की बचत के कारण कम लागत में तैयार की जा सकती है।

- गेहूँ में 25 प्रतिशत से ज्यादा बीज की बचत पाई गई है।
- खाद द्वारा दी गई नाइट्रोजन में भी 25 प्रतिशत से ज्यादा की बचत पाई गई है।
- मेंडों के ऊपर की मिट्टी जल्दी सूख जाने के कारण खरपतवार के बीज जो मेंड़ की ऊपरी सतह में होते हैं। उग नहीं पाते अतः मंडूसी का प्रकोप कम होता है।
- यांत्रिक विधि से खरपतवार नियंत्रण हो सकता है क्योंकि नालियों में आसानी से गुड़ाई की जा सकती है तथा हाथ से खरपतवार निकालना भी आसान होता है।

jkVjh fVyst rduhd

रोटरी टिलेज तकनीक चीन में बने पावर टिलर के रोटावेटर के आधार पर ट्रैक्टर से चलने वाली मशीन बनवाकर विकसित की गई है। इसमें मृदा को भुरभुरा करने के साथ साथ बीज एवं खाद की उचित मात्रा, उचित गहराई पर डाल कर पाटा भी लगाया जाता है ।

यह सब कार्य एक ही बार ट्रैक्टर चलाने से किये जाते हैं। पिछले दो सालों में इस तकनीक का भी दूसरी तकनीकों जैसे जीरो टिलेज, रेज्ड बेड एवं परम्परागत पद्धति के साथ धान की कटाई के बाद किसानों के खेत पर मूल्यांकन किया गया। इसमें गेहूँ की पी.बी.डब्ल्यू 343 प्रजाति सभी जगहों पर उचित समय पर बोई गई। रोटरी तकनीक से औसत उत्पादन (56.12 कुंतल/हैक्टर) सभी जुताई तकनीकों से अधिक मिला। पहले गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, करनाल में चार साल के परीक्षणों में भी पाया गया कि रोटरी टिलेज से दूसरी पद्धतियों (जीरो, रेज्ड बेड, परम्परागत) की तुलना में गेहूँ का उत्पादन 7–10 प्रतिशत अधिक होता है।

ystj ySaM ysofyax

लेजर लैण्ड लैवलिंग तकनीक से खेत को समतल किया जाता है ताकि खेत के हर हिस्से में बराबर पानी पहुँचाया जा सके। इसमें लेजर चालित उपकरण प्रयोग में लाया जाता है तो यह सुनिश्चित करता है कि खेत पूरी तरह समतल हो। इसी की सहायता से खेत में ऊँचे हिस्सों (भागों) से मिट्टी उठाकर निचले हिस्सों में डाली जाती है। खेत पूरी तरह समतल हाने तथा कम पानी उपयोग के कारण लगभग 20 प्रतिशत पानी की बचत होती है। कम मेंड़ों और नालियों की आवश्यकता होने के कारण फसल उगाने के लिए 3–4 प्रतिशत अधिक क्षेत्र उपलब्ध हो जाता है।

इन सभी कारणों से कम लागत आने पर भी लगभग 10 प्रतिशत तक पैदावार बढ़ जाती है। फसलों के मेंड़ पर उगाये जाने को बढ़ावा देने के लिए इस तकनीक को बढ़वा देने के लिए इस तकनीक को अपनाना और भी आवश्यक है तथा कम पानी वाले क्षेत्रों में यह बहुत लाभकारी सिद्ध हो सकती है। इस मशीन की कीमत लगभग 4 लाख रुपये है। अधिक कीमत हाने से हर किसान इसे नहीं खरीद सकता, परन्तु किराये पर लेकर इसका उपयोग कर सकते हैं।

èkku d ckn xg cku dh fofHkUu rduhdk dh vkfFkd ,o Åtk vko';drk

किसानों के खेतों पर किये गये प्रयोगों में पाया गया कि धान फसल के बाद गेहूँ बोने के लिये प्रयोग की जाने वाली जुताई तकनीकों में सबसे अधिक एवं सबसे कम लागत तथा उर्जा क्रमशः परम्परागत एवं जीरो टिलेज पद्धति में लगती है। जीरो तकनीक के बाद दूसरी तकनीक जो लागत एवं उर्जा को कम करने में प्रभावी पाई गई वह है रोटरी टिलेज क्योंकि गेहूँ की बुआई इन दोनो जुताई तकनीकों में एक ही बार ट्रैक्टर चलाने से की जाती है। इसलिए लागत में क्रमशः 32.32 एवं 11.6 प्रतिशत की कमी पाई गई। शुद्ध लाभ रोटरी टिलेज में सबसे अधिक जीरो टिलेज तथा इससे कम रेज्ड बेड तकनीक में सबसे कम पाया गया। यह रोटरी टिलेज में जीरो एवं रेज्ड बेड तकनीक से ज्यादा उत्पादन मिलने के कारण सम्भव हुआ।

fVyt rduhdk dk [kjirokjk dh l[;k ij iHkko

किसानों के खेत पर किये गये शोध कार्य में यह देखा गया कि विभिन्न जुताई तकनीकों का खरपतवार संख्या पर प्रभाव पड़ता है। मंडूसी/कनकी की संख्या एवं वन गाजर परम्परागत विधि की तुलना में जीरो टिलेज में कम आता है। जीरो टिलेज जुताई में इस खरपतवार की कमी मृदा को कम से कम पलटने के कारण होती है जिससे की भूमि में नीचे की सतह पर पड़े खरपतवारों के बीज उग नहीं पाते ।

रेज्ड बेड तकनीक में भी कनकी की संख्या परम्परागत पद्धति से कम पाई गई क्योंकि मेंड़ के ऊपर की मिट्टी जल्दी सुखने के कारण मेंड़ के अन्दर बहुत कम गीलापन रह जाता है जिससे इस खरपतवार के बीज उग नहीं पाते। मंडूसी के कारण जीरो टिलेज में सबसे अधिक तथा परम्परागत पद्धति में सबसे कम पैदावार हुई।

वर्तमान परिदृश्य में कृषि संबंधित घटते संसाधन व बदलते जलवायु के साथ–साथ निरंतर बढ़ती आबादी ने जहां एक तरफ खेती के तौर तरीकों पर प्रश्न चिन्ह लगा दिया है, वहीं इन सीमित संसाधनों से अधिकाधिक उत्पादन प्राप्त करना भी आवश्यक है। यह केवल संसाधनों के समुचित वैज्ञानिक तौर तरीकों को अपना कर ही किया जा सकता है, ऐसी परिस्थिति में संरक्षण कृषि, एक सशक्त विकल्प के रुप में किसानों के समक्ष है जो वर्तमान कृषि की सभी समस्याओं का निदान करने में सक्षम है।

पूर्वी उत्तर भारत में सघन गेहूँ उत्पादन तकनीक

,y ih frokjh] ,u ch flg] okbZ ih flg] ih d xIrk] tkon cgkj] jktohj flg]
ftrUnz dekj ,oa pk#y dpu
pUnz'ks[kj vktkn Ñf"k ,oa iks|kfxd fo'ofo|ky;] dkuiqj] mÙkj izns'k

उत्तर प्रदेश में गेहूँ का उत्पादन जलवायु के आधार पर सभी जनपदों में किया जा रहा है जलवायु परिवर्तन न केवल भारत बल्कि सम्पूर्ण विश्व के सामने एक चुनौती के रुप में उभर कर आया है। भारत सहित विश्व के तमाम देश इस विभिषिका से त्रस्त हो रहे है तथा इससे बचने के लिए उपाय ढूंढे जा रहे हैं। मानव व कृषि जनित क्रियाओं के सम्मलित प्रभाव से वातावरण में ग्रीन हाउस गैसों का सान्द्रण अधिक बढ़ जाने के कारण इस शताब्दी के अन्त तक पृथ्वी के सतह का तापक्रम 1.8 से 4.0 डिग्री सेल्यिस बढ़ जाने का संकेत दिख रहा है जिसका प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रुप से प्रभाव फसलोत्पादन, पशुपालन, भूमि, मछली पालन एवं कीटों पर पड़ने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है। भारत में बढ़ती जनसंख्या (लगभग 1.20 अरब) के दबाव के कारण भरण–पोषण का दारोमदार कृषि एवं उपलब्ध अन्य प्राकृतिक संसाधनों पर है।

उत्तर प्रदेश के 30 वर्षों के आधार पर (1980 से 2010 तक) औसत वर्षा में कुल 101.8 मि. ली. (11.01 प्रतिशत) की कमी प्राप्त हुई। इससे स्पष्ट है कि इस क्षेत्र की औसत वर्षा में लगातार गिरावट पाई जा रही है। इसी प्रकार 1974–2009 के मध्य मानसून वर्षा आकड़ों के आधार पर दक्षिणी–पश्चिमी मानसून (जून से सितंबर) में पिछले 36 वर्षों में प्रति तीसरे या चौथे वर्ष जून एवं सितंबर माह में वर्षा न्यून या अति न्यून प्राप्त हुई है यानि की अधिकांशतः माह जून एवं सितंबर सूखे का रहा है। वर्षा के मौसम में वर्ष 2001 से 2010 के मध्य सूखे की स्थिति रही इस क्षेत्र के तापमान में पिछले 40 वर्षों में अधिकतम तापमान 0.46 डिग्री सेल्सियस एवं न्यूनतम तापक्रम में 0.45 डिग्री सेल्सियस की वृद्धि दर्ज हो चुकी है। तापक्रम के लगातार बढ़ते क्रम से रबी की फसलों के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहा है। चूंकि फसल उत्पादन में नमी एवं तापमान अति महत्वपूर्ण अवयव हैं अतः पूर्व वर्षा एवं तापमान के आकड़ों का ध्यान में रखकर हमें इस क्षेत्र की फसलों, फसल–चक्र, बुआई का समय, उपयुक्त एवं संस्तुत क्षेत्रीय प्रजातियाँ, फसलों की अवधि, मृदा में तत्वों की स्थिति, मृदा उर्वरकता एवं उपलब्ध कृषि संसाधनों के अनुरुप फसल प्रणाली अपनानी होगी तभी हम अपने उत्पादन लक्ष्य को प्राप्त कर पाने में सफल होंगे।

eksle ifjorZu dk Ñf"k ij izHkko

वातावरण में कार्बन डाई ऑक्साइड व तापमान के बढ़ने से अनेकों बदलाव जैसे वर्षा का समय से न होना, वायु की दिशा एवं गतियों में बदलाव, समुद्री जल स्तर में बढ़ोत्तरी, अनावृष्टि एवं सूखा

इत्यादि की गंभीर आशंका महसूस की जा रही है। कार्बन डाई ऑक्साइड बढ़ने से पौधो में प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया में वृद्धि तथा फोटो व श्वसन की क्रिया में कमी होगी।

जलवायु के विभिन्न कारक जैसे तापमान, आद्रता, प्रकाश एवं वायु की दिशा एवं गति के विकास, वृद्धि एवं जीवन को मुख्य रुप से प्रभावित करती हैं जिससे विभिन्न फसलों की कीटों का आगमन, वंश वृद्धि और जीवनकाल जलवायु कारकों से प्रभावित होताा है।

जलवायु परिर्वतन के कारण मृदा का स्वास्थ्य लगातार बिगड़ता जा रहा है। इसका मुख्य कारण भूमि में लगातार पोषक तत्वों की कमी का होना है। जिससे भूमि की उर्वरकता का क्षरण होता जा रहा है। वर्तमान में नत्रजन व फास्फोरस उर्वरकों का प्रयोग फसल उत्पादन में ज्यादा किया जा रहा है जिससे भूमि में मुख्य तत्वों के साथ–साथ सूक्ष्म पोषक तत्वों की निरन्तर कमी परिलक्षित हो रही है जिसका सीधा प्रभाव भविष्य में उगायी जाने वाली फसल एवं उसके उत्पादन पर पड़ता है। वर्तमान में 80 प्रतिशत किसानो के पास एक हैक्टर से कम कृषि भूमि रह गयी है। इतनी छोटी जोत में भी अपना भरण–पोषण इस बदलते मौसम में भी कर सकें यह विचारणीय विषय है।

l|>ko

1. समय से पंक्तिबद्ध बुआई करें।
2. बीज का विस्थापन नवीन प्रजातियों से करें।
3. संस्तुत प्रजातियों का उपयुक्त जलवायु क्षेत्र में ही बुआई करें।
4. बीज का शोधन बुआई के पूर्व अवश्य करें।
5. गुणवत्तायुक्त बीज, रसायनिक खादों एवं सिंचाई समय से उपलब्ध करायी जाय।
6. उत्पादन तकनीकी जैसे जीरो टिल, रोटावेटर तथा मेड़ों पर बुआई को बढ़ावा दिया जाय।
7. जल उपयोगिता एवं संरक्षण का विशेषकर बुन्देलखण्ड क्षेत्रों में विशेष ध्यान रखा जाय।
8. उष्मा अवरोधी, अल्पवाधि परिपक्वता एवं कम उर्वरक उपयोगी गेहूँ की प्रजातियों जैसे हलना, उन्नत हलना, नैना, एन.डब्ल्यू. 1014, के. 9162, डी.बी.डब्ल्यू 14 का उपयोग किया जाय।
9. दानों के भराब के साथ (90–95 दिन) हल्की सिंचाई वायु की गति के अनुकूल करें।
10. रतुआ रोग अवरोधी प्रजातियों का प्रयोग किया जाय। क्षेत्रवार संस्तुत प्रजातियों के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों की प्रजातियों का प्रयोग न किया जाय इससे दूसरे क्षेत्र की बीमारी आने की संभवना रहती है।
11. भौतिक परिपक्वता पर ही फसल की कटाई सुनिश्चित करें।
12. रसायनिक खरपतवारनाशकों जैसे आईसोप्रोट्यूरान, सल्फोसल्फ्यूरॉन आदि का प्रयोग प्रथम सिंचाई के बाद नमी की दशा में किया जाये।

13. सूक्ष्म तत्वों जैसे लोहा एवं जिंक का प्रयोग धान–गेहूँ फसल चक्र में अवश्य किया जाय।

14. मूंग जैसी दलहनी फसलों के बाद गेहूँ की खेती संस्तुत की जाय।

egRoi.kZ lkoèkkfu;k

1. विलम्ब से बुआई को प्रोत्साहन न किया जाय। 15 वर्ष से अधिक पुरानी किस्मों की जगह नवीन संस्तुत प्रजातियों को उगाएँ।
2. रसायनिक कीटनाशकों एवं खरपतवारनाशकों का कम से कम प्रयोग किया जाय।
3. सतही अथवा बिखेरकर बुआई को हतोत्साहित किया जाय।
4. संस्तुत मात्रा उर्वरकों का प्रयोग किया जाय।
5. गहरी सिंचाई न करें।

lkj.kh 1- mÙkj in'k e xg dh mRiknrk dk iHkkfor dju oky dkjdk dh igpku

e.My	{k=Qy ¼000 g-½	mRiknu 000 ehfV d Vu	mRikndrk d-@g-	vojksèkk dk fpUgkdu
भावर एवं तराई क्षेत्र	154.4	502.3	32.3	उच्च उर्वरकता वाला क्षेत्र है जिसमें संस्तुत प्रजातियों की उपलब्धता न होने से पैदावार कम है।
पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	101.0	368.7	37.8	उच्च उर्वरकता वाला क्षेत्र है जिसमें संस्तुत प्रजातियों की उपलब्धता न होने से पैदावार कम है।
मध्य पश्चिमी मैदानी क्षेत्र	172.2	526.8	32.6	उच्च उर्वरकता वाला क्षेत्र है जिसमें संस्तुत प्रजातियों की उपलब्धता न होने से पैदावार कम है।
दक्षिणी पश्चिमी अर्द्ध शुष्क क्षेत्र	147.3	519.5	34.6	खारे पानी की प्रचुरता होने के कारण पैदावार कम है। उपयुक्त प्रजातियों की उपलब्धता के साथ जिप्सम को उप. लब्धता व जमाव को सुद्रण करने के लिए राजोबियम/एजोटोवेक्टर का प्रयोग शुष्क एवं ताप अवरोधी प्रजातियों के साथ किया जाय।
मध्य मैदानी क्षेत्र	155.6	501.3	32.3	सल्फर एवं जिंक अभाव होने के कारण पैदावार में कमी हैं जिसे सल्फर या जिंक युक्त उर्वरकों के प्रयोग से उत्पादन बढ़ाया जा सकता है।

e.My	{k=Qy ¼000 g-½	mRiknu 000 ehfV'd Vu	mRikndrk d-@g-	vojkèkk dk fpUgkdu
बुन्देखण्ड क्षेत्र	107.8	256.4	22.5	जल की आपूर्ति कम एवं बुआई के उचित साधन न होने तथा समय से बीज का उपलब्ध न होना पैदावार पर प्रभाव डालता है। अतः फब्बारा विधि या टपका विधि से सिंचाई की अवश्यकता है।
उत्तरी मैदानी क्षेत्र	130.4	384.4	28.8	समय से बुआई नहीं हो पाती तथा पोषक तत्व प्रबंधन एवं बीज की उपलब्धता समय पर न होना उत्पादन को प्रभावित करता है। अतः शून्य कर्षण जैव उर्वरक तथा शूक्ष्म तत्वों युक्त उर्वरकों का प्रयोग उत्पादन बढ़ाने के उत्तम उपाय है।
पूर्वी मैदानी क्षेत्र	382.3	28.7		समय से बुआई नहीं हो पाती तथा पोषक तत्व प्रबंधन एवं बीज की उपलब्धता समय पर न होना उत्पादन को प्रभावित करता है। अतः शून्य कर्षण जैव उर्वरक तथा शूक्ष्म तत्व युक्त उर्वरकों का प्रयोग उत्पादन बढ़ाने के उत्तम उपाय है।
बिंध्य क्षेत्र	120.2	278.2	21.8	उच्च तापमान एवं जल भराव के कारण उत्पादन संतोषजनक नहीं हो पाता है। अतः फब्बारा या बून्द–बून्द सिंचाई इस क्षेत्र के लिये लाभदायक होगी।

संरक्षण तकनीकों द्वारा फसल उत्पादन

ofnrk feÙky] jftrk rju] lkfu;k ‘;kjku ,o eeFkk ,p ,e
xg vu lèkku fun'kky;] djuky] gfj;k.kk

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारत के कुल क्षेत्रफल 3287590 वर्ग किलोमीटर में से 1797070 वर्ग किलोमीटर क्षेत्र कृषि के अन्तर्गत आता है। भारत में कृषि निश्चित रुप से आजीविका का एक सबसे बड़ा साधन है। अधिकतर उद्योग–धंधे कच्चे माल के लिए इस पर निर्भर करते हैं। पिछले कुछ दशकों से भारतीय कृषि में तीव्र रुपांतरण हो रहा है। वैश्वीकरण व उदारीकरण की नीति ने आधुनिक कृषि के लिए नए रास्ते खोल दिए हैं। भारत लगातार 250 मिलियन टन के आस–पास अनाज का उत्पादन कर रहा है। जिसमें 100 मिलियन टन चावल, 90 मिलियन टन गेहूँ, 35 मिलियन टन कपास और 18 मिलियन टन से अधिक दालों का उत्पादन शामिल है। विश्व कृषि बाजार में भारत एक अच्छे व्यापारी की तरह सामने आया है। 12वीं पंचवर्षीय योजना के अनुसार कृषि विकास का लक्ष्य 3.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 4 प्रतिशत रखा गया है। इस कृषि विकास दर को व बढ़ती हुई जनसंख्या के लिए खाद्यान्न की मांग को पूरा करने के लिए कृषि के लिए उपयोग में लाए जा रहे संसाधन जैसे जल व मृदा का उचित उपयोग और संरक्षण अति आवश्यक हो गया है। इन संसाधनों के उचित प्रबन्धन द्वारा ही अधिक उत्पादन को सुनिश्चित किया जा सकता है।

नए मानक कोश के अनुसार कृषि अधिकांश देशों की अर्थव्यवस्थाओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है इसलिए मनुष्य द्वारा संसाधनों को सुरक्षित रुप से इस्तेमाल किया जाना चाहिए ताकि वह भविष्य में भी इनको उपयोग में ला सके। खाद्य व कृषि संगठन, रोम के अनुसार कृषि संरक्षण, फसल उत्पादन के लिए, संसाधनों की बचत करने की अवधारणा है जिसके द्वारा अधिक व निरंतर उत्पादन के समवर्ती पर्यावरण संरक्षण द्वारा अधिक लाभ प्राप्त किया जा सके।

Ñf"k lj{k.k d ie[k fl)kr

1. न्यूनतम कर्षण क्रियाएं
2. मृदा बचाव
3. फसल चक्रण

(चित्र–1)
शून्य जुताई प्रणाली के दौरान खुली दरार में अंकुरण

इन सिद्धान्तों की पूर्ति के लिए आधुनिक युग में कृषि की कई आधुनिक प्रणालियों पर बल दिया जा रहा है। जिनमें से शून्य जुताई प्रणाली का बहुत महत्व है। साधारणतय किसान गेहूँ की बिजाई से पहले धान के खेत को साफ करने व तैयार करने के लिए पुरानी

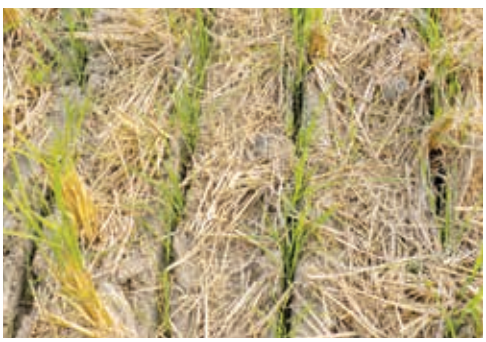

फसल के अवशेषों को जला देते हैं, जिससे वायु प्रदूषण होता है व साथ ही उन्हे 6–8 बार खेत की जुताई करनी पड़ती है जिससे समय, मेहनत व ईंधन का अपव्यय होता है।

''खाद्य व कृषि संगठन के अनुसार जुताई कृषि सबसे अधिक ऊर्जा क्षय वाली प्रक्रिया है''। इससे गेहूँ की उत्पादन कीमत व बुआई का समय दोनो बढ़ जाते हैं साथ ही मृदा जल क्षय के कारण गेहूँ का उत्पादन भी कम होता है। इन सब समस्याओं का एकल समाधान शून्य जुताई प्रणाली है। जिससे 30–40% तक समय व मेहनत की बचत ही जा सकती है। इस प्रणाली के अन्तर्गत खेत को तैयार किए बिना एक उल्टे टी आकार के यन्त्र (शून्य कर्षण यन्त्र) से धरती में 2–3 सें.मी. चौड़ी व 4–7 सें.मी. गहरी दरार की जाती है, जिसमें बीज डाला जाता है (चित्र–1)। कुछ किसानों को पक्षियों द्वारा बीज खाए जाने का डर रहता है। परन्तु प्रयोगात्मक गणना के अनुसार इतनी गहराई पर यह सम्भव नहीं है। वैज्ञानिकों द्वारा दिए गए प्रमाणों के अनुसार इन खुली दरारों में गेहूँ व अन्य फसलों के बीजों का अंकुरण व उद्भव भी बहुत अच्छी तरह से होता है। चावल–गेहूँ की कृषि लगातार 5–6 साल तक इसी प्रकार की जा सकती है। इस प्रणाली द्वारा किसानों को लगभग 3000–3500 रु./ हैक्टर की बचत होने का भी आंकलन किया गया है।

बिना जुताई किए गए खेत में, जुताई किए गए खेत की अपेक्षा जल भी आसानी से बह जाता है। जिससे फसल की हल्की सिंचाई भी हो जाती है और जल भराव की समस्या भी दूर हो जाती है साथ ही खनिज लवणों की भी कमी नहीं आती। शून्य जुताई प्रणाली से 8 घंटे में 4–5 हैक्टर खेत बोई जा सकती है आजकल बिना जुताई प्रत्यक्ष बुआई करने के लिए कई प्रकार की मशीने उपलब्ध करवाई जा रही है। इसे कृषि का मशीनीकरण कहते हैं। मशीनीकरण, शहरीकरण का एक प्रमुख हिस्सा है जो बड़े पैमाने पर उत्पादन को प्रोत्साहित करता है और साथ ही कृषि गुणवत्ता में सुधार लाता है। प्राचीन समय में इसकी शुरुआत हल द्वारा की गई थी परन्तु आधुनिक समय है कई सुस्वरुपित आधुनिक यंत्रों का अविष्कार हो चुका हैं जिनमें; टर्बो हैप्पी सीडर, पॉवर रोटरी डिस्क और भूसा प्रबंधन प्रणाली शामिल है। टर्बो हैप्पी सीडर एक हल्की व संशोधित मशीन है। इसके द्वारा धान जैसी फसलों के अवशेषों को बिना हटाऐ, खेत में समान रुप से बिखेर दिया जाता है और उन्हे मृदा आवरण के रुप में इस्तेमाल कर फसल की बुआई की जाती है जो मृदा में से जल का ह्रास होने से रोकती है व साथ ही खजिन लवणों की आपूर्ति करती है। इसकी दक्षता 80–90% तक है। इसके द्वारा 8 टन/हैक्टर धान के अवशेष को फैलाया जा सकता है। गेहूँ–कपास कृषि प्रणाली में खड़ी कपास में गेहूँ की बुआई करने के लिए एक अन्य मशीन रीले व्हीट प्लान्टर का आजकल उपयोग किया जा रहा जाता है। गेहूँ–कपास की फसल के मध्य स्थान बनाए रखने में इसकी दक्षता बहुत अधिक है। इनके अलावा मृदा रिक्तिकरण व फसल चक्रण से भी मृदा में खनिज लवणों की आपूर्ति कर फसल उत्पादन को बढ़ाने व कृषि संरक्षण के सिद्धान्तों को पूरा करने की कोशिश की जाती है। मृदा रिक्तिरण में भूमि को कुछ समय तक खाली छोड़कर अन्य कार्यों जैसे पशुपालन आदि में उपयोग किया जाता है। जिससे मृदा गुणवत्ता में सुधार होता है। फसल चक्रण द्वारा सूक्ष्मजीवों को

न केवल खाद्‌य में विविधता देकर पथ भ्रष्ट किया जाता है बल्कि अलग–अलग फसलों को अलग अलग गहराई से खनिज लवण लेकर अपना पोषण कर उत्पादन बढ़ाने में मदद मिलती है।

Ñf"k lj{k.k dk ykHk

vkfFkd ykHk

- उत्पादन क्षमता में सुधार
- समय व मेहनत की बचत
- लागत में कमी
- उच्च दक्षता
- कम निवेश

Ñf"k ykHk

- मृदा की उत्पादकता में सुधार
- मृदा सरंचना में सुधार
- कार्बानिक पदार्थों में वृद्धि
- मृदा–जल की सुरक्षा

i;koj.k o lkekftd ykHk

- जल की गुणवत्ता में सुधार
- वायु की गुणवत्ता में सुधार
- मृदा संरक्षण
- मृदा कटाव का रोकना
- जैव विविधता में वृद्धि

इन लाभों को प्राप्त करने के लिए प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन प्रौद्योगिकियों (जैसे–लेजर लैण्ड लेवलिंग, जीरो टिल, सीडिंग इनपुट डिवाईस व अनुबंध खेती का बहुत महत्व है। इनसे फसल उत्पादन तो बढ़ता ही है साथ में बेरोजगारों को रोजगार भी प्राप्त होता है। कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा इन प्रौद्योगिकियों को अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन कर, कृषक प्रशिक्षण द्वारा व लोकप्रिय लेखों को स्थानीय भाषाओं में प्रकाशित कर देश भर में लोकप्रिय बनाया जा रहा है।

इस प्रकार संसाधन संरक्षण की इन आधुनिक तकनीकों को अपनाकर एक कृषक खाद्यन्न उत्पादन की प्रक्रिया को सरल, सुरक्षित, सस्ता व टिकाऊ बना सकता है।

संसाधन संरक्षण तकनीक द्वारा गेहूँ का उत्पादन

je'k pUn[1]] lh ih JhokLro[2]] th lh feJk[3]] oh d feJk[4]] ,l d flg[5]]
ch v:.k[6] ,o v:.k dekj tk'kh[7]

[1&6]Ñf"k foKku lLFkku] dk'kh fgUnw fo'ofo|ky;] okjk.klh] [7]ofj"B xg ifjtud ,o {k=h; leUo;d lhfeV nf{k.k ,f'k;k] dkBekUMw] uiky

गेहूँ उत्पादन में पिछले एक दशक में बहुत सी नयी तकनीकों का समावेश किया गया है। इन नई तकनीकों में वह तकनीक सर्वाधिक महत्वपूर्ण समझी जाती है जिससे प्रतिदिन ह्रास हो रहे प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं संर्वधन हो सके है, जिससे गेहूँ की उपज कम लागत में हो सके तथा किसान को अधिकतम लाभ मिल सके। संसाधन संरक्षण तकनीक में प्रमुखयता पानी, मिट्टी, जीवांश को इस प्रकार संरक्षित किया जाता है जिससे प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण टिकाऊपन तरीके से हो सके। वैसे तो इस तकनीक का प्रयोग कृषक अपने ज्ञान और स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल सदियों से करता आ रहा है लेकिन साधन संरक्षण तकनीक का गेहूँ व अन्य फसलों के उत्पादन के लिए प्रयोग सामाजिक परिस्थिति एवम् रूढ़ीवादी प्रचलन के कारण एक कठिन कार्य था। किसानों में बहुत सारी कहावतें प्रचलित थीं जैसे "गेहूँ, मैदे ढेले चना"। सामान्य प्रचलन में गेहूँ के खेत की तैयारी में कृषक खेत को कम से कम से 5–6 बार जुताई करके मिट्टी को इतना पोली बनाने का प्रयास करता था कि यदि उसमें पानी में भरा मिट्टी के घड़ा ऊपर से छोड़ा जाये तो वह टूटे नहीं।

गत वर्षों में संसाधन संरक्षण तकनीक को गेहूँ जैसी प्रमुख फसल में अपनाने का भरपूर प्रयास किया जाता रहा है। इसका महत्व भारवतवर्ष के उत्तर पूर्वी गंगा मैदान में और भी अधिक है क्योंकि भारतवर्ष में गेहूँ के कुल उत्पादन में उत्तर प्रदेश एवं बिहार का 40 प्रतिशत योगदान है। अतः इस क्षेत्र की पैदावार बढ़ाने से भारत के कुल उत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि स्वाभाविक है। वर्ष 1997–98 में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली एवं अन्तर्राष्ट्रीय मक्का एवं गेहूँ अनुसंधान केन्द्र, मैक्सिको एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सहयोग से जीरो टिल

चित्र संख्या. 1: भारतवर्ष में गेहूँ उत्पादन का राज्यवार प्रतिशत

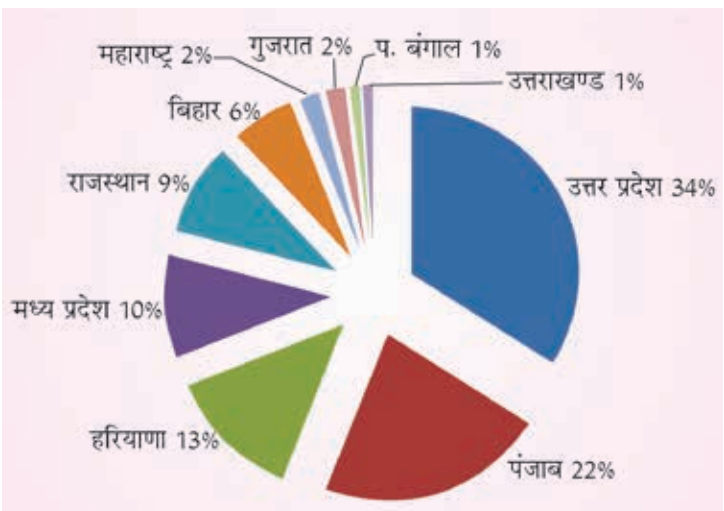

मशीन के लिए किसानों को प्रेरित करना प्रारम्भ किया गया। मिर्जापुर जिले से यह योजना प्रारम्भ होकर आज पूर्वी उत्तर प्रदेश के लगभग सभी जिलो में जीरो टिल मशीन का प्रयोग हो रहा है। जल–जमाव वाले क्षेत्रों की पहचान करते हुये उतेरा विधि के लिए किसानों को प्रोत्साहित किया गया जिसे किसानों ने बहुत ही पसंद किया। इस कार्य में नई–नई उन्नत प्रजातियों के प्रयोग पर भी उतना ही बल दिया गया।

पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार में धान–गेहूँ फसल चक्र लगभग 80 प्रतिशत क्षेत्र में प्रचलित है। लगभग दो दशकों से यहाँ पर 60–70 प्रतिशत क्षेत्र में धान की प्रजाति एम.टी.यू. 7029 (नाटी मंसूरी) की खेती हुआ करती है। यह प्रजाति लम्बे समय (135–145 दिन) की है अतः विलम्ब से तैयार होती है। अतः जुलाई–अगस्त में रोपाई के बाद इसकी कटाई दिसम्बर के प्रथम से लेकर अन्तिम सप्ताह या उससे भी देर में की जाती है। सामान्यतः देरी से धान की कटाई के बाद गेहूँ की बुआई के पूर्व किसान या तो खेत सूखने का इन्तजार करता है या यदि खेत सूखा हो तो पलेवा करता है। फिर कम से कम दो–तीन जुताई करके गेहूँ की बुआई करता है जिसमें लगभग 10–20 दिन का समय लग जाता है। इसके फलस्वरूप गेहूँ के उचित विकास के लिए मात्र 100 से 110 या अधिकतम 120 दिन ही मिल पाता है, जो गेहूँ की उत्पादकता पर ऋणात्मक प्रभाव डालता है। मार्च के दूसरे पखवाड़े में गर्मी बढ़ना इस समस्या का मुख्य पहलू है। इन समस्याओं को ध्यान में रखते हुए इस क्षेत्र में गेहूँ की उत्पादकता को बढ़ाने का प्रयास, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, करनाल और अन्तर्राष्ट्रीय मक्का एवं गेहूँ अनुसंधान केन्द्र, मैक्सिको द्वारा पिछले दो दशक से किया जा रहा है।

साधन संरक्षण तकनीक के मुख्यतः तीन बिन्दु है; (1) खेत की जुताई न होना (2) फसल के जीवाश्म को खेत में ही छोड़ देना तथा (3) उपयुक्त फसल चक्र को अपनाना। पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार में तीन पहलुओं पर जोर दिया गया।

1. देर से बोई जाने वाली, ताप एवं रोगरोधी प्रजाति का विकास।
2. किसानों द्वारा उत्पादन हेतु कुशलता से उपयोग।
3. वैज्ञानिक तरीकों से जीरो टिल एवं सतही बुआई का अधिक से अधिक प्रयोग साथ ही उन्नत बीज उत्पादन एवं फसल चक्र को भी बढ़ाया गया।

इसके लिए कृषक सहभागी शोध को एक संगठन के रूप 1997 से स्थापित किया गया। इस संगठन में धान–गेहूँ के 1000 से अधिक किसानों की सहभागिता सुनिश्चित की गई। प्रथम वर्ष में यह प्रयोग, ग्राम करहट, तहसील जमालपुर, जिला मिर्जापुर और उसके आस–पास केन्द्रित था। पहले ही वर्ष (1997–98) में इस प्रयोग से उपज में 60–70 प्रतिशत की वृद्धि प्राप्त हुई और अगले तीन वर्षों में इसका प्रयोग 1000 से अधिक किसानों के खेत में हुआ और लगभग सब जगह उत्पादन में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई।

lkèku lj{k.k dk viuku l fd lkuk dk fuEu ykHk dk Kku gvk

1. धान की कटाई के तुरंत बाद गेहूँ की बुआई जिससे किसानों को पलेवा एवं जुताई से मुक्ति ।
2. गेहूँ की छिटकवा विधि में जहाँ 140–160 किग्रा/है. बीज का प्रयोग होता है, इस विधि में बीज दर 100–120 किग्रा./हैं. होने से बीज की बचत होती है।
3. उत्पादन लागत में प्रति हैक्टर 3000 से 3500 रु. की बचत।
4. जुताई नहीं होने से खरपतवार (खासतौर से गेहूँ का मामा) के बीज ऊपर नहीं आते जिससे खरपतवार में कमी आती है तथा उत्पादन वृद्धि होती है।
5. जीरो टिल मशीन के प्रयोग से बुआई के साथ–साथ उर्वरकों का जड़ों के पास प्रयोग होने से पौधों द्वारा उसका समुचित उपयोग होता है।
6. बिना जुताई किये जीरो टिल मशीन द्वारा अथवा सतही बुआई के कारण मिट्टी में नमी बनी रहती है जो स्वय एक सिंचाई का कार्य करती है तथा पानी की बचत होती है।
7. प्रथम सिंचाई में पौधे पीले नहीं पड़ते हैं जबकि इसके विपरीत जुते खेत में जड़ों में पानी इकट्ठा होन से पौधे पीले पड़ जाते हैं और पैदावार घट जाती है।
8. सीधी बुआई करने से धान के अवशेष को जलाना नहीं पड़ता है। जबकि पुरानी विधि में किसान इसे जलाने के लिए बाध्य हो जाते हैं।
9. अवशेष को न जलाए जाने से मिट्टी के सतहों पर पाया जाने वाले कृषि उपयोगी सूक्ष्मजीव मरते नहीं जिससे मिट्टी के जीवाश्म में वृद्धि होती है तथा उसकी भौतिक एवं रासायनिक गुणवत्ता में उन्नति होती है।
10. लाईन से बुआई होने से निकाई एवं कटाई सुविधाजनक होती है।

कृषक सहभागी शोध द्वारा नई प्रजातियों, उन्नत बीज उत्पादन एवं संसाधन संरक्षण का गत 10 वर्षों में प्रभावशाली प्रचार–प्रसार हुआ तथा किसानों में इसे लोकप्रियता प्राप्त हुई परन्तु साथ ही कुछ समस्याओं का भी सामना करना पड़ा। 5 जिलों के लगभग एक हजार किसान भाइयों के विचार लेने पर निम्न समस्याएं अवगत हुई;

1. पूर्वी उत्तर प्रदेश एवं बिहार में जीरो टिल मशीन का बुआई के लिए अभाव। यद्यपि की राष्ट्रीय कृषि विकास योजना एवं राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा मिशन के अर्न्तगत किसानों को 50 प्रतिशत छूट पर मशीन उपलब्ध है। छूट प्रादेशिक सरकार देती है और मशीन सरकारी गोदामों से उपलब्ध कराती है परन्तु बहुधा गुणवत्ता खराब होने के कारण किसान लेना पसंद नहीं करते हैं।
2. मशीन बहुउद्देशीय नहीं होने से किसान इसे लेने से कतराता है क्योंकि मशीन का प्रयोग एक वर्ष में मात्र 30 दिन के लिए ही हो पाता है।

चित्र 2. बिना जुते खेत में जलीय फर्न।

चित्र 3 धान के अवशेष के बीच गेहूँ की फसल (ग्राम भरुहिया, तहसील चुनार, जिला मिर्जापुर) किसानः श्री अनिल सिंह

चित्र 4. जीरो टिल से बुआई के बाद ग्रासहॉपर का प्रकोप। यह कभी–कभी देखा जाता है। ग्राम भुड़कुड़ा, तहसील चुनार, जिला मिर्जापुर

चित्र 5. सतही बुआई में गेहूँ के पौधे। ग्राम भुड़कुड़ा, तहसील चुनार, जिला मिर्जापुर, किसानः श्री हरिर्कीतन सिंह

3. छोटे किसानों के खेत में मशीन का प्रयोग ठीक से नहीं हो पाता है। अतः छोटे खेतों में इसके प्रयोग के लिए मशीन में तकनीकी सुधार की आवश्यकता है।

lkèku lij{k.k rduhd dk f}rh; pj.k dk iz;kx %

गेहूँ की बुआई में साधन संरक्षण तकनीक के अंतर्गत जीरो टिल मशीन का प्रयोग छोटे किसानों एवं जल जमाव वाले क्षेत्रों में आसान नहीं होता अतः सहभागी शोध के अंतर्गत गेहूँ की सतही बुआई का प्रयोग ग्राम पिड़खिर ताल एवं ग्राम कटडिहा, तहसील चुनार, जिला मिर्जापुर के किसानों के साथ शुरू किया। गेहूँ की सतही बुआई धान कटने के 7 से 10 दिन पहले कर दिया जाता है। बुआई के एक सप्ताह के अन्दर धान की फसल काट कर बाहर निकाल लेते हैं तथा प्रथम सिंचाई के समय सारे उर्वरकों का प्रयोग करते हैं। इससे किसानों को फसल बुआई में लगभग 3 से 4 सप्ताह का लाभ मिलता है।

lrgh cqvkbl dk fy, iztkfr;k

सतही बुआई के लिए विशेष प्रजाति की कोई स्पष्ट संतुति नहीं है। पर्याप्त नमी होने की दशा में सारी प्रजातियों का जमाव अच्छा पाया गया है। कृषक सहभागी शोध के अन्तर्गत कुछ संस्तुत प्रजातियाँ (मालवीय 234, मालवीय 468, पी.बी.डब्ल्यू. 343) और गेहूँ की अन्य लाइनों का परीक्षण किया और किसानों ने डी.बी.डब्ल्यू. 14, पी.बी.डब्ल्यू. 154, राज 3077, एच.डी. 2425, सरपट एवं अग्रिम को पूर्वी उत्तर प्रदेश एवम् बिहार में बड़े प्रक्षेत्र में अपनाया है। देर से बुआई करने के लिए किसानों में 'अग्रिम' प्रजाति की मांग तेजी से बढ़ी है। इसे बीज की निजी कम्पनियों द्वारा बढ़ाया जा रहा है। अधिक कल्ला एवं शीघ्र जगह घेरने वाली प्रजातियाँ सतही बुआई के लिए उपयुक्त पायी गई है। किसानों का अनुभव इस विचार को बल देता है। सतही बुआई के लिए गेहूँ की ऐसी प्रजातियों की आवश्यकता है जो जमीन से नमी को शीघ्र अवशोषित कर ले और बीज का अधिकतम जमाव हो सके। जड़ों का शीघ्र विकास जिससे जड़े भूमि के नीचे से नमी को अवशोषित कर सके। पौधों में कल्ले फैल कर निकले ताकि आस–पास उगने वाले घासों को न बढ़ने दें। सतही बुआई में किसान नवम्बर में बुआई कर लेते हैं। अतः लम्बे समय की प्रजातियाँ भी लाभकारी सिद्ध हुई है।

lrgh cqvkbl ea moZjdksa dk iz;ksx

वैज्ञानिक संस्तुति है कि फास्फोरस एवं पोटाश जैसे उर्वरकों का प्रयोग जड़ों के पास होना चाहिए। परन्तु इस विधि में सभी प्रकार के उर्वरक प्रथम सिंचाई के बाद जमीन के ऊपर बिखेर दिये जाते है। यह प्रयोग पिछले 10 वर्षों से ग्राम कटडिहा, तहसील चुनार, जिला मिर्जापुर के किसान 50 हैक्टर में कर रहे हैं और उत्पादन में कोई गिरावट नहीं देखी गयी है। सतही बुआई की फसल में उर्वरकों के प्रभावी उपयोग और उनकी मात्रा तथा खेत में प्रयोग के समय को लेकर वैज्ञानिक सुझावों की आवश्यकता है। सतही बुआई में फास्फोरस एवं पोटाश उर्वरकों को अधिक मात्रा धान की रोपाई के समय ही डालकर उसका लाभ सतही विधि से बोई गई गेहूँ में बिना इन उर्वरकों को डाल लिया जा सकता है। ऐसी स्थिति में गेहूँ में केवल यूरिया को छिड़काव कर नत्रजन का प्रयोग किया जा सकता है। लेकिन इसके लिए अभी वैज्ञानिक ऑकड़ों की जरूरत है।

lkj.kh 1- iohZ xaxh; eSnkuh {ks= esa fiNys ,d n'kd ls iz;qDr xsgw¡ dh iez[k iztkfr;ksa dh ifr gsDVj mRiknrk

	2001	2002	2003	2004	2005	2006	2007	2008	2009	2010	2011
मालवीय 234	2.80	2.60	2.75	3.00	2.80	2.70	2.75	2.60	2.80	3.00	3.10
मालवीय 510					2.90	2.85	3.00	2.80	3.20	3.10	3.20
पी.बी.डब्ल्यू.154					3.00	3.25	3.15	3.30	3.35	3.30	3.40
सरपट									3.60	4.00	3.80
अग्रिम									3.20	3.35	3.40

साधन संरक्षण तकनीक के पिछले फसलों के अवशेषों को छोड़ देने या भूमि में मिला देने से उन पर पलने वाले बहुत सारे रोग कारक नष्ट नहीं होते है और बीमारी वर्ष दर वर्ष बढ़ने लगती है। सतही बुआई वाले अनेक क्षेत्र में दो से तीन महीने जल भराव होने से उस खेत के रोग कारक मर जाते है। कठडिया में चल रहे प्रयोग में किसी भी तरह के रोगों में वृद्धि नहीं देखी गई है।

lrgh cqvkbZ dh oSKkfud fof/k

1. सतही बुआई उन क्षेत्र में बहुत सफल है जहाँ मिट्टी में नमी देर तक बनी रहे। सामान्यतया निचला क्षेत्र जहाँ बरसात में जल भराव की स्थिति होती है सतही बुआई के लिए अत्यन्त उपयुक्त क्षेत्र है।
2. बुआई के समय यदि खेत में चलने पर खेत की मिट्टी हल्का–हल्का दबे तो समझना चाहिए की बुआई के लिए उपयुक्त समय है।
3. बीज दर सामान्य से 20 प्रतिशत अधिक रखते हैं क्योंकि बहुत सारे बीज धान के पौधों पर फस जाते हैं तथा जमाव को प्रभावित करते हैं।
4. बीज को रात भर पानी से भिगोकर एवं 2 ग्रा. बीटावेक्स दर/किलो बीज दर का प्रयोग करने से बीज के जमाव का प्रतिशत बढ़ जाता है।
5. बुआई के एक सप्ताह के अन्दर धान को काट कर बाहर निकाल देते हैं। धान के कटे हुए पौधे सुखने के लिए नहीं छोड़ते हैं। सुखने के लिए छोड़ने पर अंकुरीत बीज नष्ट हो सकते हैं।
6. उर्वरकों का प्रयोग प्रथम सिंचाई के बाद करना चाहिए। प्रथम सिंचाई ताज मूल अवस्था पर नमी देखकर की जानी चाहिए।
7. उर्वरकों में पोटाश 60 किग्रा॰ प्रति हैक्टर (15 किग्रा॰ प्रति बीघा), एन॰पी॰एस॰ (20–20–0–13) 280 किग्रा॰ प्रति हैक्टर (70 किग्रा./बीघा), एन.पी.के. 120:80:60 किग्रा॰ प्रति हैक्टर (30:20:15 किग्रा./बीघा), डी.ए.पी. 200 किग्रा. प्रति हैक्टर (50 किग्रा./प्रति बीघा) तथा बोरेक्स या ग्रैन्यूबोर 8 किग्रा./हेक्टर (2 किग्रा./बीघा), (1 हैक्टेयर = 4 बीघा) की दर से प्रयोग पहली सिंचाई के ठीक बाद उपयुक्त नमी पर करना चाहिए। चूंकि जिंक सल्फेट का प्रयोग धान की फसल में होता है इसलिए गेहूँ की फसल में इसके प्रयोग की आवश्यकता नहीं होती है। यूरिया का 200 किग्रा./हैक्टर (50 किग्रा./बीघा), की दर से दूसरी एवं तीसरी सिंचाई के साथ छिड़काव करना चाहिए।

lkeku lqj{k.k rduhd esa Qly lqj{kk

धान की कटाई के तुरंत बाद गेहूँ की जीरो टिल मशीन या सतही बुआई के कारण मिट्टी में नमी बनी रहती है और गेहूँ का पौधा जल्दी जम जाता है। अतः यदि धान की फसल पर ग्रास हॉपर लगा है, वह गेहूँ के नये जमें पौधों पर जा सकता है और नुकसान कर सकता है। कभी–कभी इस

कीट का प्रकोप इतना अधिक देखा गया है कि गेहूँ की फसल की दोबारा बुआई करनी पड़ती है। इस कीट के नियंत्रण के लिए निम्नलिखित विधियाँ अपनायी जा सकती हैं।

गर्मी में खेतों के बीच में बनी मेड़ों की जुताई कर देनी चाहिए, जिससे ग्रास हॉपर के अण्डे जो कि मेड़ों के किनारे में दिये रहते हैं, या तो धूप में नष्ट हो जाते हैं या पक्षी उन्हें खा जाते है।

साइपरमेथ्रिन 25% ईसी का 2 मिली प्रति लीटर पानी की दर से इस कीट के गेहूँ में लगते ही छिड़काव कर देना चाहिए।

l:lkèku l:j{k.k rduhd fodkl e: lkf[;dh dk egRo

संसाधन संरक्षण की तकनीक विकसित करने के लिए सांख्यिकीय का विशेष योगदान हो सकता है। पूरे देश में उपलब्ध संसाधनों का बहुत बड़ा आंकड़ा कोष तैयार करके उन्हें अलग–अलग वर्गों में बाट कर आकड़ों का लम्बे स्तर पर विश्लेषण करना होगा, इसके लिए आंकड़ा खनन डेटा माईनिंग की आधुनिक तकनीक को अपनाकर आंकड़ों में मौजूद पैटर्न की पहचान करके उसमें छिपी सूचनाओं को निकालना होगा, इसके लिए ऐसे संगणक की मदद ली जाये जिनमें आर्टिफिशियल इन्टलीजेन्स (कृत्रिम बुद्धिमता) हो, इसमें मशीन लर्निंग का बहुत महत्वपूर्ण सहभागिता हो सकता है। आंकड़ा खनन में हम सेमी स्वचलित तरीके से पुराने बहुत बड़े (आंकडे खनन) स्तर पर इकट्ठा किये गये आंकड़ों में अन्जान किन्तु रूचिकर पैटर्न को कलस्टर एनालिसिस की सहायता से पता लगा सकते हैं, इन्हें एक तरीके से एकत्र किये हुए आंकड़ों का सांराश कहा जा सकता है, जिसकी सहायता से हम भविष्य मे उपलब्ध संसाधनो का पुर्वानुमान लगा सकते है, यही नहीं, उन संसाधनों का फसल उत्पादन में बढ़ोत्तरी करने के तरीकों पर एक नीति बनाई जा सकती है, कृषि में ज्योग्राफिक इन्फोरमेशन सिस्स्टम (जी.आई.एस.) आई.सी.टी. (इन्फारर्मेशन एण्ड कम्यूनिकेशन टेक्नोलॉजी) द्वारा एक इकमित सूचनाओं का साख्यिकीय विधियों से विश्लेषण करके बड़े अच्छे परिणाम प्राप्त किये जा सकते हैं, उपलब्ध आंकडों के पैटर्न को पता लगाने के लिए सैकड़ों वर्षों से प्रयास चल रहा है, सूचना तकनीक क्रांति के बाद 1960 से सांख्यिकीय में निर्णय वृक्ष बनाने का काम चल रहा है, इन्हें आधुनिक संगणकों ने बड़ा आसान बना दिया है।

fu"d"k

संसाधन संरक्षण तकनीकों के प्रयोग एवं सतही बुआई के पिछले 10 से अधिक वर्षों के अनुभव के आधार पर यह पाया गया की ऐसी वैज्ञानिक तरीकों प्रचलन से उपज में वृद्धि होती है, बुआई का बहुमूल्य समय बचता है, खेती में लागत कम होती है जिसके फलस्वरूप किसानों को आर्थिक रूप से लाभ प्राप्त होता है। अतः भविष्य में ऐसी संसाधन संरक्षण तकनीक का अधिक से अधिक प्रयोग होगा, जिसका किसानों एवं क्षेत्र के आर्थिक विकास के साथ–साथ अन्न सुरक्षा में योगदान होगा।

संसाधन संरक्षण तकनीक द्वारा फसल उत्पादन

l[kno flg[1] ,o ,e d dkf'kd[2]

Ñf"k foKku dUn] cyUn'kgj[1] ,o vulèkku dUn] cyUn'kgj[2]] mÙkj in'k

पानी, भूमि व उर्वरकों के प्रयोग में असुन्तलन, सघन जुताई व फसल अवशेषों को जलाना प्राकृतिक संसाधनों को विनाश की ओर ले जा रहा है। मृदा का स्वास्थ्य दिनो दिन, खराब हो रहा है। अच्छा गुणवत्ता वाला सिंचाई जल व पीने वाला पानी भी घटता जा रहा है। कारक उत्पादकता में कमी, मृदा में कार्बनिक पदार्थों की कमी, मृदा में बहु आयामी पोषक तत्वों की कमी, निवेश उपयोग क्षमता में कमी, असुन्तलित उर्वरकों का प्रयोग, मौसम की अनिश्चितता हेतु उपयुक्त प्रजातियों का अभाव, संरक्षित कृषि का अभाव, अन्तः फसलीकरण के लिये उपयुक्त प्रजातियों का अभाव, धान–गेहूँ एकल फसल चक्र का बाहुल्य, शुष्क क्षेत्रों के लिए उत्पादन तकनीकी के व्यापक प्रचार–प्रसार में कमी एवं एकीकृत खरपतवार तकनीकी का न अपनाया जाना इत्यादि कृषि के चिन्तनीय विषय हैं। कृषि क्षेत्र की विकास दर में वृद्धि के लिये उपलब्ध संसाधनों का न केवल अनुकूलतम उपयोग कृषि उत्पादन लागत में कमी के उपायों पर भी बल दिया जाना आवश्यक हो गया है। उत्पादन लागत को कम करने में कम से कम अथवा बगैर अतिरिक्त लागत युक्त तकनीकों का महत्वपूर्ण योगदान हो सकता है। इस परिपेक्ष्य में कुछ तकनीकों का विवरण निम्नवत है।

1. परिस्थितियों/क्षेत्र के अनुसार फसल व प्रजातियों का चुनाव– क्षेत्र के अनुसार संस्तुति प्रजातियों का चयन करें। जिस समय के लिये क्षेत्र में बुआई की संस्तुति की गई हो उसी समय पर बुआई करें।

2. समय से बुआई/रोपाई –उत्तर भारत में सर्वाधिक क्षेत्रफल धान, गेहूँ फसल–चक्र के अर्न्तगत है परन्तु ये दोनो ही फसलें नीयत समय से न बोये जाने के कारण अपनी क्षमता के अनुसार उत्पादन देने में समर्थ नहीं होती हैं। प्रचलित प्रजातियों को ध्यान में रखते हुये धान की रोपाई जुलाई के प्रथम पक्ष में एवं गेहूँ की बुआई नवम्बर के प्रथम पक्ष में पूर्ण कर ली जाय तो उत्पादन बिना किसी लागत के बढ़ जायेगा। यहां ध्यान रखना आवश्यक है कि विलम्ब की संभावना को देखते हुये तदनुसार उपयुक्त प्रजातियों को अपनाया जाये।

3. बीज शोधन–फसलों के वृद्धि एवं विकास के दौरान रोग एवं कीटों के प्रभाव से सर्वाधिक क्षति होती है। प्रायः रोग/कीट का प्रकोप समय से ज्ञात न होने से अत्यधिक क्षति का सामना कृषकों को सामना करना पड़ता है। धान, गेहूँ, गन्ना, आलू, दलहनी एवं तिलहनी फसलों को बीज शोधन के माध्यम से सम्भावित रोग/कीटों से मुक्त रखा जा सकता है। वर्तमान में जैव बीज शोधकों तथा ट्राइकोडर्मा के प्रयोग से कम लागत में फसल बीज के जमाव में वृद्धि के साथ–साथ उन्हें रोगों से भी संरक्षित रखा जा सकता है। बीज शोधन की लागत खड़ी फसल में रोग/कीटों के उपचार की तुलना में बहुत कम व्यय होता है साथ ही फसल की क्षति होने वाली हानि से भी

बचा जा सकता है। जैव उर्वरकों तथा एजोटोवैक्टर, राइजोबियम, पी.एस.बी. आदि से उपचार कर फसलों के पोषक तत्वों की मांग को पूरा किया जा सकता है।

4. उर्वरक/जैव उर्वरक– विभिन्न फसलों को 17 पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है इन 17 तत्वों में कार्बन, हाइड्रोजन व ऑक्सीजन प्रकृति से मिलते हैं, शेष 14 तत्व पौधे जमीन से लेते हैं। इन 14 तत्वों में नाइट्रोजन, फास्फोरस व पोटाश की ज्यादा मात्रा में पौधों को जरूरत होती है। इन्हीं मुख्य पोषक तत्वों को हम विभिन्न रासायनिक उर्वरकों से देते हैं। किस उर्वरक की कितनी मात्रा दें इसका सबसे अच्छा तरीका मिट्टी की जांच कराकर उर्वरकों की मात्रा निर्धारित करें। लागत कम करने हेतु निम्न बातों पर ध्यान दें–

   - हमारे खेतों में फास्फोरस की काफी मात्रा है, क्योंकि हम जो फास्फेटिक उर्वरक खेतों में डालते हैं, पहली बार में उसका 25 प्रतिशत ही फसलों को मिलता है, शेष मिट्टी में ही भन्डारित हो जाता है। इसे फसलों को प्राप्त कराने हेतु फॉस्फोरस घोलक जीवाणु जैव उर्वरकों का प्रयोग करें, जो भन्डारित फास्फोरस को घुलनशील अवस्था में लाकर फसलों को उपलब्ध कराता है।
   - डी.ए.पी. के स्थान पर फास्फोरस के अन्य स्रोत जैसे सिंगल सुपर फास्फेट, एन.पी.के. एन.पी. कॉम्पलेक्स उर्वरकों का इस्तेमाल करें।
   - बुआई के समय फॉस्फेटिक उर्वरक केवल कूड़ों में प्रयोग करें इससे फास्फोरस उपल्ब्धता की क्षमता में 15 प्रतिशत तक सुधार होता है।
   - क्षारीय मिट्टी का जिप्सम से सुधार करने पर मिट्टी में फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ती है।

5. सहफसली खेती– कृषि योग्य क्षेत्र पर जनसंख्या के निरन्तर बढ़ते दबाव से छोटी हो रही जोतों से आर्थिक रूप से लाभप्रद उत्पादन करना कठिन हो रहा है। ऐसी दशा में उपर्युक्त सहफसली खेती से न केवल प्रति इकाई उत्पादन बल्कि प्राकृतिक कारणों से सम्भावित हानि के स्तर को भी कम किया जा सकता है। कुछ प्रमुख सहफसली प्रणाली/फसल चक्र निम्नवत है– गेहूँ+सरसो (9+1 के पंक्ति अनुपात), आलू+ राई (3+1 के अनुपात में), गन्ना +राई (1+2 के अनुपात में), गन्ना+मसूर (1+3 के अनुपात में) एवं उड़द–सरसों के फसल चक्र से सरसों का उत्पादन व तेल का प्रतिशत बढ़ जाता है साथ ही भूमि की उर्वरता भी बनी रहती है। सहफसली पद्धति में दोनों फसलों की जाति एवं प्रकृति भिन्न रखी जाती है इससे पोषक तत्वों की आपूर्ति, सिंचाई जल की आवश्यकता व अन्य देख–रेख में संन्तुलन बना रहता है।

mi;Dr Ñf"k ;U=k dk mi;kx

- बुआई हेतु बीज सह उर्वरक ड्रिल का प्रयोग बीज एवं उर्वरक दोनों की उपयोग क्षमता को बढ़ाता है।

- जीरो टिलेज सीड ड्रिल के माध्यम से विलम्ब की दशा मे धान के खेत में बिना अतिरिक्त तैयारी किये बुआई की जा सकती है। इससे न केवल खेत की तैयारी पर होने वाले व्यय की बचत होती है बल्कि समय से बुआई के कारण उत्पादन भी अधिक मिलता है।
- रोटावेटर की सहायता से खेत की जुताई, बुआई के लिये तैयारी, समतलीकरण आदि कार्यों को सुगमता से कम समय में पूर्ण किया जा सकता है।
- फब्बारा एवं टपका विधि से सिंचाई द्वारा सीमित जल वाले, असमतल क्षेत्रों में बागवानी तथा नकदी फसलों का उत्पादन कम लागत पर अधिक क्षेत्रों में किया जा सकता है। आम के बगीचों में ड्रिप सिंचाई विधि से लगभग 69 प्रतिशत तक सिंचाई जल की बचत के साथ–साथ उर्वरक प्रयोग दक्षता, पैदावार लागत व श्रम व्यय में कमी के साथ उत्पादन वृद्धि सम्भव है।

vfèkd mRiknu gsrq bUg Hkh viuk;sa

- गर्मी में गहरी जुताई मिट्टी पलटने वाले हल से अवश्य करें। भुमि का समतलीकरण लेजर लेवलिंग द्वारा अवश्य करें इससे पैदावार व जल उपयोग क्षमता काफी बढ़ जाती है।
- वर्षा जल के सरंक्षण एवं भू क्षरण को रोकने हेतु खेत की मेंड़ मजबूत एवं ऊँची रखें। पहली एवं लम्बे अन्तराल पर हुई वर्षा में जल के साथ वायुमंडलीय नत्रजन घुला होने के कारण भूमि की उर्वरा क्षमता में वृद्धि होती है।
- फसल–चक्र में दलहनी फसलों का समावेश अवश्य करें।
- मृदा परीक्षण के आधार पर संस्तुत मात्रा मे खाद एवं उर्वरकों का प्रयोग करें। उर्वरकों का प्रयोग कूड़ों में करें। सल्फर व जिप्सम का प्रयोग भी करें।
- धान–गेहूँ फसल–चक्र वाले क्षेत्रों में मृदा उर्वरकता को बनाये रखने के लिये हरी खाद हेतु ढैंचा, सनई की बुआई करें।
- मृदा स्वास्थ्य के सुधार हेतु कार्बनिक खाद जैसे कम्पोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, नाडेप कम्पोस्ट, प्रेस मड आदि का प्रयोग करें।
- यथासम्भव आधारीय या प्रमाणित बीज का प्रयोग संसतुत मात्रा में ही करें। यदि घर के बीज का प्रयोग बुआई हेतु किया जा रहा है तो बीज का उपचार फफूंदनाशक रसायन या बायोपेस्टीसाईड से अवश्य करें।
- अधिक उत्पादन हेतु पंक्तियों में बुआई करें। फसल अवशेष में बुआई करके समय की बचत कर सकते हैं।
- कम लागत में गुणवत्तायुक्त उत्पादन प्राप्त करने हेतु जैव उर्वरक, बायोपेस्टीसाइड्स, जैविक खादों का प्रयोग करें।

- खेत में धान के पुआल, गेहूँ के डंठल आदि को न जलावें। बल्कि डिस्क हैरो या मिट्टी पलटने वाले हल से खेत में पलटकर सड़ायें। शून्य कर्षण, बेड प्लांटिंग, रोटेरी भूपरिष्करण अपनायें इससे भूमि की तैयारी में 77 प्रतिशत समय व डीजल की लगभग 80 प्रतिशत बचत होती है।
- फसलों की सिंचाई पलेवा विधि से ना करें बल्कि सिंचाई की उन्नत विधियों जैसे क्यारी, थाला, बार्डर, चेक, बेसिन स्प्रिंकलर, ड्रिप सिंचाई विधि आदि का प्रयोग करें। असमतल खेतों फब्बारा सिंचाई का प्रयोग करें।
- अधिकतम उत्पादन प्राप्त करने हेतु एकीकृत पौध पोषण प्रबन्धन एवं एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन तकनीक को अपनायें।
- फसलों में खरपतवार नियंत्रण करें। धान–गेहूँ फसल–चक्र में आलू, जई व बरसीम की फसल लेने से खरपतवार स्वतः ही बिना रसायनों के प्रयोग से समाप्त हो जाते हैं। फसल सघनता, बुआई का समय, प्रजाति, बीज दर, पौधे से पौधे की दूरी, कर्षण क्रियाएं, उर्वरक प्रयोग का समय व मात्रा एवं सिंचाई जल की मात्रा आदि विभिन्न कारक खरपतार की जनसंख्या को नियंत्रित करते हैं।

संसाधन संरक्षण एवं देश की खाद्य सुरक्षा

gjhvke] Mh ,l nknku ,o eaxr jke
pk p flag g Ñ fo ekku vu lekku dUn] dky] gfj;k.kk

कृषि क्षेत्र में देश में पिछले चार दशकों में बहतु ही महत्वपूर्ण वृद्धि अंकित की है। साठ के दशक में भारत देश औसतन 10 मिलियन टन अनाज का आयात करता था। हरित क्रांति के आगाज के साथ ही देश को आत्मनिर्भर होने में लगभग दस वर्ष का समय लग गया और 1976 में देश अनाज के मामले में आत्मनिर्भर हो गया। इस उपलब्धि में धान व गेहूँ की उन्नत किस्मों का विशेष योगदान रहा। ये किस्में सिंचाई रसायनिक खादों और दूसरे कृषि रसायनों के प्रति संवेदनशील थी। धान व गेहूँ की फसल ने देश के खाद्यान्न उत्पादन हुआ जिसमे से लगभग तीन–चौथाई उत्पादन धान व गेहूँ फसलों से प्राप्त हुआ।

विश्व स्तर पर हमारा देश 2.3 प्रतिशत क्षेत्रफल, 4.3 प्रतिशत जल स्त्रोत और 16 प्रतिशत जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करता है। भारत में पशुओं (लाईवस्टॉक) की संख्या 500 मिलियन से अधिक है जो विश्व में सर्वाधिक है। बढ़ती हुई जनसंख्या और पशुओं की संख्या के लिए खाद्य जरुरत की पूर्ति करना सभी व्यक्तियों के लिए, जो भी कृषि से जुड़ा है, एक चुनौती है। वर्तमान संदर्भ को देखते हुए सन् 2050 में देश की खाद्य जरुरत को पूरा करने के लिए 450 मिलियन टन अनाज की आवश्यकता है अर्थात हमें प्रति वर्ष 5–6 मिलियन टन अनाज का उत्पादन बढ़ाना होगा। जुलाई 2013 में खाद्य सुरक्षा बिल पर अध्यादेश जारी कर दिया गया है। जिससे देश की 67 प्रतिशत जनसंख्या को अनाज की सुरक्षा मिल सकेगी। जिस दिन भी यह बिल अमल में आ जाएगा उसी दिन से देश को प्रति वर्ष न्यूनतम 65 मिलियन टन अनाज भंडारण की आवश्यकता पड़ेगी जो एक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

धान–गेहूँ फसल चक्र देश में लगभग 12 मिलियन हैक्टर क्षेत्रफल में अपनाया जाता है। यह फसल–चक्र उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों का अत्यधिक दोहन करता है और देश की खाद्य सुरक्षा इस पर काफी हद तक निर्भर करती है। फसल प्रणाली पर चार वर्ष तक किए गए एक अनुसंधान के अनुसार पाया गया कि धान–गेहूँ फसल–चक्र 728 किलो पोषक तत्व भूमि से दोहन करता है जबकि हरियाणा के दूसरे मुख्य फसल चक्र कपास–गेहूँ 626 किलो और बाजरा गेहूँ 562 किलो तक अवशोषित करते हैं। स्पष्ट है कि धान–गेहूँ फसल–चक्र में डाले गये पोषक तत्वों व फसल के द्वारा अवशोषित किए गए पोषक तत्वों की मात्रा में बहुत बड़ा अंतर है। पूरे देश के स्तर पर देखा जाए तो यह अंतर 10 मिलियन टन से भी अधिक है। यह आंकलन दर्शाता है कि भूमि की उर्वरा शक्ति का अत्यधिक दोहन किया जा रहा है। इसकी पूर्ति करना और उर्वराशक्ति को बनाए रखना अति आवश्यक है। अधिक पैदावार देने वाली किस्मों की आवक उपयोग क्षमता 30 प्रतिशत से भी कम है। अकेले नत्रजन की प्रयोग होने वाली क्षमता लगभग 33 प्रतिशत है।

उपलब्ध पानी के स्त्रोतों का दोहन एक और गंभीर समस्या है। देश के स्तर पर देखा जाए तो सन् 1995 में अति दोहन (ओवर एक्सप्लोएटेशन) की श्रेणी वाले जोन 249 थे जो दस वर्षों के बाद 837 हो गए अर्थात् 236 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी अंकित की गई। अनाज की परिस्थिति जो और भी विकट है जहां भी धान–गेहूँ फसल चक्र अपनाया जाता है। वहां जल–स्त्रोत तीव्र गति के साथ खाली होते जा रहे हैं। पंजाब और हरियाणा की स्थिति एक भयावह तस्वीर प्रस्तुत करती है। हरियाणा का जिला कुरुक्षेत्र जो धान–गेहूँ फसल चक्र में अग्रणी है दर्शाता है कि सन् 1976 से 2012 तक इसके नीचे जाने की गति 4–5 फुट प्रति वर्ष अंकित की गई।

आने वाले समय में जलवायु तापमान में वृद्धि, बढ़ता हुआ रायानिक उत्पादों का प्रयोग, बिगड़ता हुआ जमीन का भौतिक स्वरुप इन समस्याओं को और भी उग्र रुप प्रदान करने में सहायक होंगें।

अतः संसाधन संरक्षण यदि सही तरह से निकट भविष्य में नहीं अपनाया गया जो देश की खाद्य सुरक्षा को खतरे का सामना करना पड़ सकता है। इसमें भूमि के स्वास्थय में सुधार एवं उपलब्ध जल–स्त्रोतों की नियमित भरपाई मुख्य कारक हैं जिनकी विशेष रुप से ध्यान रखने की आवश्यकता है। इनके अतिरिक्त जलवायु परिवर्तन भी संसाधन संरक्षण के उपायों को प्रभावित कर सकता है। निम्नलिखित उपायों से इनकी स्थिति में सुधार किया जा सकता है।

Hkfe LokLF; e lq/kkj

1. जैविक/कार्बनिक खादों का प्रयोग : हमारे देश में पशुओं की संख्या सबसे अधिक है जो प्रति वर्ष लगभग 2100 मिलियन टन गोबर उत्सर्जित करते हैं। इसमें से केवल 350 मिलियन टन गोबर का प्रयोग बनाने के लिए किया जाता है बाकि जलाने के काम आता है या फेंक दिया जाता है। जो खाद बनाने के लिए प्रयोग किया जाता है उससे भी निम्न कोटि का खाद तैयार होता है जिसके काफी पोषक तत्व नष्ट हो जाते है या वर्षा के पानी के साथ बह जाते हैं। इस गोबर का प्रयोग यदि उत्तम तरीके से किया जाए तो भूमि की उर्वराशक्ति को बढ़ाने में यह बहुत सहायक हो सकता है। बायो गैस, केंचुआ की खाद या कम्पोस्ट के द्वारा गोबर में विद्यमान गुण संरक्षित किए जा सकते हैं।
2. फसल अवशेष प्रबन्धन : देश में उपलब्ध फसलों के अवशेष काफी मात्रा में जला दिए जाते हैं। एक आंकलन के अनुसार देश की मुख्य खाद्य फसलों से 306.6 मिलियन टन अवशेष प्राप्त होते हैं। जिसमें लगभग 17.53 लाख टन नत्रजन, 8.23 लाख टन फास्फोरस और 38.98 लाख टन पोटाश विद्यमान रहती है जिसकी कीमत 8000 करोड़ से अधिक है। इनको जलाने से न केवल पोषक तत्व जलते हैं बल्कि जमीन में विद्यमान जैविक कार्बन व दूसरे पोषक तत्व, सूक्ष्मजीव जो भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाने में व उसके सुधार में सहायता करते हैं, भी नष्ट हो जाते हैं। इसके साथ ही इससे वातावरण भी दूषित होता है। अतः इन अवशेषों को न जलाकर इन्हें वापस जमीन में मिला देना अत्यंत आवश्यक है।

3. हरी खाद का प्रयोग : हरी खाद का प्रयोग करने से वातावरण में उपलब्ध नत्रजन जो पौधे के अंदर स्थापित हो जाती है जमीन व मुख्य फसल को उपलब्ध हो जाती है। धान–गेहूँ फसल–चक्र में ढैंचा की हरी खाद से 60–80 किलो नत्रजन प्रति हैक्टर धान की फसल को उपलब्ध हो जाती है। मूंग व उड़द जैसी फसलों को यदि हरी खाद के रुप मे प्रयोग किया जाए तो किसान की आमदनी बढ़ने के साथ–साथ भूमि की उर्वरा शक्ति में भी बढ़ोत्तरी होती है। ढैचा या मूंग की हरी खाद लेने से धान की किस्मों में खादों की आवश्यकता नहीं रहती है।

4. अनाज वाली फसलों क बीच के समय में दाल वाली फसलों को फसल–चक्र में शामिल करना अति आवश्यक है जिससे भूमि की उर्वरा शक्ति बनी रहती है।

5. जहां अधिक पैदावार लेने वाली फसलें जैसे धान, गेहूँ आदि ली जाती हैं वहां पर कार्बनिक और अकार्बनिक का समन्वित प्रयोग करना उचित है।

ikuh dh cpr o mldk lefpr i;ksx

1. बिजाई की तकनीक : धान अनुसंधान केन्द्र, कौल पर किए गए अनुसंधान में पाया गया है कि रोपित किए गए धान की बजाए यदि बासमती किस्मों की सीधी बिजाई की जाए तो इसमें लगभग 25 प्रतिशत पानी की बचत होती है धान की रोपाई एस.आर.आई विधि से करने पर 10 प्रतिशत पानी की बचत पाई गई है। मशीन चालित धान रोपाई यंत्र और मेंड़ पर फसल की बुआई करने से भी पानी की बचत होती है। इसके साथ–साथ इन विधियों से मजदूरों की समस्या का समाधान भी होता है। देश में किये गये विभिन्न प्रयोगों से पाया गया है कि बेड प्लांटिंग से धान व गेहूँ की फसलों में लगभग 6 प्रतिशत व मक्की में 35 प्रतिशत तक पानी की बचत होती है।

2. लेजर लेवलर का प्रयोग : इस विधि के प्रयोग से धान और गेहूँ की फसलों का 3–5 प्रतिशत उत्पादान बढ़ता है और 25–30 प्रतिशत पानी की बचत पाई गई है। धान की सीधी बिजाई, गेहूँ की जीरो टिलेज, मशीन चालित धान रोपाई यंत्र और मेड़ पर बिजाई जैसी तकनीक लेजर लेवलिंग के बाद अधिक कामयाब पाई गई है। शोध में पाया गया है कि जहां पर खेत असमतल हैं, उनमें धान की रोपाई करने से पहले पडलिंग के लिए अधिक पानी की खपत होती है व समतल खेतों में पडलिंग के बाद मंडूसी के 7.7–10.1 प्रतिशत बीज जमीन की ऊपरी 2 मी.मी. सतह पर आ जाते है जबकि समतल खेतों में यह मात्रा 1.0–5.1 प्रतिशत हैं। अधिक पानी भरने से हल्के खरपतवारों के बीज पडलिंग के दौरान छनकर ऊपरी आ जाते हैं।

3. भूगत पानी की पाईप लाईन बिछाने से पानी की 30–40 प्रतिशत बचत होती है और खालों के न होने से 2–3 प्रतिशत खेती योग्य भूमि में इजाफा होता है। खालों से पानी के रिसने के कारण आसपास घास जमता है व फसल भी प्रभावित होती है।

4. फसल विविधीकरण से भूमि स्वास्थ्य में सुधार होने के साथ–साथ पानी की बचत भी होती है।

5. धान की असुगंधित किस्मों में अधिक पानी की आवश्यकता होती है। अतः सुगंधित किस्मों की बिजाई अधिक क्षेत्रफल में करनी चाहिए। आमतौर पर सुगंधित किस्मों से किसानों की आमदनी भी अधिक होती है। दूसरी फसलों में भी ऐसी किस्मों का चुनाव करना चाहिए जिनमें पानी की कम खपत हो और अधिक पैदावार मिलें।

6. हरियाणा के मध्य और पश्चिमी क्षेत्रों में भूमिगत पानी में नमक की मात्रा अधिक होने से उन जमीनों में पानी के उचित प्रबंधन से अधिक पैदावार ली जा सकती है और पानी की उत्पादकता बढ़ाई जा सकती है।

7. भूमिगत पानी की रिचार्जिंग के लिए बारिश के दिनों में तालाबों में व खेत में वाटरसेड मैनेजमेट के द्वारा संरक्षण किया जा कसता है। जरुरत पड़ने पर यह पानी सिंचाई के काम भी आ सकता है। सरकारी स्तर पर भी इसका प्रबंधन करके किसानों को यह पानी जरुरत के समय बांटा जा सकता है। सिरसा (हरियाणा) में ओटू झील इसका जीवंत उदाहरण है जहां तक इस झील का पानी सिंचाई के लिये प्रयोग होता है उन खेतों में धान व गेहूँ फसलों की 10–15 प्रतिशत अधिक पैदावार होती है और इस पानी में आवश्यक पोषक तत्व होने से भूमि का भी सुधार होता है।

8. फसलों में क्रिटीकल अवस्था पर उचित नमी बनाए रखने से पैदावार में कमी नहीं आती और पानी की भी बचत होती है। जरुरत से अधिक पानी रखने से फसल को नुकसान होने की संभावना रहती है।

9. फब्बारा व टपका विधि से पानी की बचत की जा सकती है और पैदावार में भी इजाफा होता है वैज्ञानिक शोधों में पाया गया है कि विभिन्न फसलों में फब्बारा विधि से 23–56 प्रतिशत तथा टपका विधि से 40–70 प्रतिशत पानी की बचत होती है।

10. विभिन्न प्रकार की मल्चेज के प्रयोग से खरपतवार नियंत्रण के साथ–साथ पानी में भी बचत होती है।

11. एक ही फार्म पर एक से अधिक कृषि व्यवसाय जैसे पशुपालन, मधुमक्खी पालन, खुम्बी उत्पादन, मछली पालन, मुर्गी पालन जैसे व्यवसाय करने से फार्म पर प्रयोग होने वाले पानी की प्रति इकाई उत्पादकता बढ़ती है तथा किसान की प्रतिदिन होने वाली आमदनी का स्त्रोत भी खुलता है।

l[lkèku l[j{k.k o tyok;q ifjorZu

जलवायु में कार्बन डाई ऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड व सी.एफ.सी. जैसी गैसों के बढ़ने से आस–पास के वातावरण का तापमान बढ़ने लगता है। वैज्ञानिक अध्ययनों में पाया गया है 1906–2005 के बीच वातावरण के तापमान में 0.740 सेल्सियस की बढ़ोत्तरी हुई है। वातावरण का तापमान बढ़ाने में सबसे अधिक सहयोग (63 प्रतिशत) कार्बन डाई ऑक्साइड का रहा है। देश के वैज्ञानिक आंकलन के अनुसार गेहूँ की फूल व फल बनने की अवस्था में यदि 10 सेलियस तापमान में वृद्धि होती है तो इसमें 4.5 मिलीयन टन पैदावार की कमी आ सकती है।

जलवायु परिर्वतन के प्रभाव से भारतीय कृषि को बचाने के लिए तथा पैदावार में कमी को रोकने के लिए भारतीय उपमहाद्वीप में विशेष उपाय करने होंगें। इनमें सबसे मुख्य उपाय है अधिक से अधिक जैविक या कार्बनिक खादों का प्रयोग और जल संरक्षण। इससे पानी की बचत तो होती ही है इसके साथ–साथ भूमि की उर्वराशक्ति भी बनी रहती है और पैदावार में कम गिरावट आती है। जैविक और अजैविक तनाव का प्रभाव भी कृषि पर बहुत कम होता है। पानी की क्रिटीकल अवस्थाओं पर भी फसल मौसम की विविधताओं का मुकाबला करने में सक्ष्म होती है। दूसरा उचित जल संरक्षण प्रबंधन व तीसरा फसलों की उचित किस्मों की खोज जो जलवायु परिर्वन को सहन कर सके जरुरी है। जलवायु परिवर्तन से फसलों की पैदावार विश्व स्तर पर 16 प्रतिशत तक घट सकती है जबकि कार्बन फर्टिलाईजेशन से यह 3 प्रतिशत तक कम की जा सकती है। एशिया में पैदावार 19 प्रतिशत, अफ्रीका में 28 प्रतिशत तथा अविकसित देशो में 26 प्रतिशत व विकसित देशों में 6 प्रतिशत तक घट सकती है। कार्बनिक खादों के प्रयोग से इस कमी को काफी हद तक कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त भारतीय उपमहाद्वीप में जल संरक्षण उपायों में जलवायु परिवर्तन के बुरे प्रभावों से काफी हद तक बचा जा सकता है और संसाधन संरक्षण में महत्वपूर्ण सफलता प्राप्त की जा सकती है।

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में गेहूँ की उन्नत खेती

vfHk"kd cgqx.kk] v:.k HkVV] lèk;k cgqx.kk ,o e;ad ukfV;ky
Okkfudh ,o iokrh; Ñf"k egkfo|ky;] jkuhpkSjh] fVgjh x<oky] mÙkjk[k.M

गेहूँ भारत की महत्वपूर्ण धान्य फसलों में से एक है तथा गेहूँ उत्पादन में भारत का विश्व में द्वितीय स्थान है विश्व में 230 मिलियन हैक्टर में गेहूँ एक बहुपयोगी धान्य फसल के रूप में उगायी जाती हैं। विश्व में इसको खाद्यान्न के रूप में प्रयोग किया जाता है। गेहूँ में विटामिन बी 1, बी 2, बी 6 व ई पाया जाता है अधिकतर गेहूँ के छिलके में सैलूलोज पाया जाता है। गेहूँ में पाचन क्रिया को तेज करने वाले एन्जाईम भी पाये जाते हैं। उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में रबी फसलों के कुल क्षेत्रफल का लगभग 80 प्रतिशत क्षेत्रफल गेहूँ के अर्न्तगत है जो अधिकांश असिंचित है। घाटियों से लेकर 2500 मीटर से अधिक ऊँचाई वाले क्षेत्रों में गेहूँ की खेती की जाती है लेकिन उत्पादकता अपेक्षा से बहुत कम है। यदि कृषक गेहूँ उत्पादन की उन्नत विधि अपनायें तो उपज काफी मात्रा में बढ़ाई जा सकती है।

lkj.kh 1- xsgw¡ esa mifLFkr iks"kd rRoksa dk vè;;u

iks"kd rRo	xsgw¡
प्रोटीन (ग्राम / 100 ग्राम)	11.80
वसा (ग्राम / 100 ग्राम)	1.50
ऊर्जा (किलो कैलोरी)	346
रेशा (ग्राम / 100 ग्राम)	1.20
खनिज लवण (ग्राम / 100 ग्राम)	1.50
कैल्शियम (मिलीग्राम / 100 ग्राम)	41
लोहा (मिलीग्राम / 100 ग्राम)	3.50

xsgw¡ dh mUur'khy iztkfr;k¡

वी एल 616, वी एल 808, वी एल 829, वी एल 832, यू पी 2382, यू पी 2338, के 147, के 542, के 896, यू पी 2425, यू पी 2554, यू पी 2572, पी बी डब्ल्यू 175, पी बी डब्ल्यू 502, पी बी डब्ल्यू 343, पी बी डब्ल्यू 527, पी बी डब्ल्यू 299, एच एस 365, एच एस 240, सी 306, एच डी 2781, एच डी 2687, एच डब्ल्यू 2044, एच डब्ल्यू 1085, एच डब्ल्यू 741 तथा एन पी 200 (डी).

गेहूँ से अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु उन्नत सस्य क्रियायें निम्नलिखित हैं:

c|vkbZ dk le;

गेहूँ की बुआई उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में ऊँचाई पर निर्भर करती है। ऊँचे पर्वतीय क्षेत्रों (1500–2400 मी.) में नवम्बर का द्वितीय पखवाड़ा तथा मध्यम व निचले पर्वतीय क्षेत्रों में दिसम्बर का प्रथम पखवाड़ा में गेहूँ की बुआई का उपयुक्त समय होता है।

cht nj

वर्षा आधारित : 100–120 किलोग्राम प्रति हैक्टर

सिंचित : 80–100 किलोग्राम प्रति हैक्टर

पंक्तिबद्ध बुआई के लिए 80 किलोग्राम प्रति हैक्टर और छिटकवा विधि से बुआई करने के लिए 100 किलोग्राम बीज प्रति हैक्टर की आवश्यकता होती है

c|vkbZ fofèk

गेहूँ की लाईन में बुआई के लिए लाईन से लाईन की दूरी 15–20 सें. मी. तथा पौधा से पौधा की दूरी 5–7.5 सें.मी. रखनी चाहिए।

cht mipkj

बुआई से पूर्व गेहूँ के बीज को 5 ग्राम स्यूडोमोनास एवं ट्राईकोडर्मा विरडी या 2.5 ग्राम थीरम की प्रति किग्रा बीज की दर से उपचारित करने पर अधिक उपज प्राप्त होती है। बीज को बुआई से पूर्व 10–15 मिनट तक 10 ग्राम एजोटोबैक्टर प्रति कि.ग्रा. बीज की दर से उपचारित करने पर अधिक उपज प्राप्त होती है।

Hkfe mipkj

गेहूँ लगाने वाले खेत में भूमि का उपचार लाभप्रद होता है इसके लिए फॉस्फेटिक 2.5 या एजोटोबैक्टर 2.5 या ट्राईकोडर्मा पाउडर 2.5 किलोग्राम अंतिम जुताई के समय में 100–120 किलोग्राम गोबर की खाद के साथ मिलाकर डालना चाहिए।

Hkfe

गेहूँ के लिए जल निकास वाली दोमट या बलुई दोमट मृदा उत्तम रहती है साथ ही मृदा पी एच 6.5 से 7.8 होना चाहिए। आर्द्र एवं ठण्डी जलवायु गेहूँ के लिए अच्छी होती है।

Qly icUèku

गेहूँ मुख्यतः शुद्ध फसल के रूप में उगाई जाती है, किन्तु कुछ स्थानों में इन फसलों को मिश्रित एवं सह फसली खेती के तौर पर उगाया जाता है। गेहूँ को दलहनी फसलों जैसे चना, मटर, मसूर आदि के साथ सहफसली खेती अधिक लाभप्रद होती है।

fl apkbZ

मुख्यतः गेहूँ की फसल में छः सिचाई की आवश्यकता होती है जिसमें कि पहली सिंचाई बुआई के 20 से 25 दिन बाद करनी चाहिए, दूसरी सिंचाई बुआई के 40 से 45 दिन बाद, तीसरी सिंचाई बुआई के 60 से 65 दिन बाद, चौथी सिंचाई बुआई के 80 से 85 दिन बाद पांचवीं सिंचाई बुआई के 100 से 105 दिन बाद तथा छठी सिंचाई बुआई के 115 से 120 दिन बाद। यदि सिंचाई का उपयुक्त साधन न हो तो सिंचाई की संख्या घटाई जा सकती है लेकिन पहली (20 से 25 दिन बाद) एवं चौथी (80 से 85 दिन बाद) अत्यंत आवश्यक है।

ik"kd rRo icUèku

गेहूँ की खेती जैविक तथा रसायनिक दोनों प्रकार से की जाती है। जैविक खाद जैसे गोबर की खाद, वर्मीकम्पोस्ट तथा फॉस्फोकम्पोस्ट का प्रयोग फसल की पोषक तत्वों की आवश्यकता की पूर्ति करते हैं। जैविक खेती के अन्तर्गत अधिक उत्पादन प्राप्त करने हेतु गेहूँ में 10 टन प्रति हैक्टर गोबर की सड़ी खाद अथवा 5 टन वर्मी कम्पोस्ट प्रति हैक्टर की दर से प्रयोग करनी चाहिए। रॉक फॉस्फेट और पी एस बी से गुणवर्धित कम्पोस्ट गेहूँ की फसल में अच्छा उपज प्राप्त की जा सकती है। अधिक उत्पादन प्राप्त करने के लिए रासायनिक रूप से गेहूँ में 120 किग्रा नत्रजन एवं 60 कि.ग्रा. फास्फोरस प्रति हैक्टर की अनुशंसा की जाती है। जिसमें नत्रजन की आधी मात्रा तथा फास्फोरस की पूरी मात्रा बुआई के समय खेत में मिला देना चाहिए। शेष आधी मात्रा बुआई के 40–50 दिन बाद खड़ी फसल में निराई–गुड़ाई के उपरान्त प्रयोग करना चाहिए। ऐसी मृदा जहाँ पर पोटाश की कमी पाई जाती हो, 40 किग्रा पोटाश प्रति हैक्टर का प्रयोग बुआई के समय अन्तिम जुताई पर करना लाभकारी होता है।

fojyhdj.k ,oa [kjirokj fu;a=.k

गेहूँ मे अतिरिक्त पौधों की छंटाई कर पौधों से पौधों की दूरी लगभग 5–7.5 सेमी कर देना चाहिए। फसल की शुरू की अवस्था में खरपतवार अधिक नुकसान पहुँचाते हैं। इसलिये खरपतवार नियन्त्रण के लिए 1 या 2 गुड़ाई 20–40 दिन की अवधि में करना आवश्यक है खरपतवार के नियन्त्रण के लिए निराई यान्त्रिक निराई यन्त्र/हैण्ड हो से कर देनी चाहिए। अधिक खरपतवार होने की दशा में दूसरी निराई पहली निराई के 20 दिन बाद कर देनी चाहिए अर्थात फसल को प्रथम 30 से 40 दिनों तक खरपतवार मुक्त रखना चाहिए।

एलाक्लोर के 1.5 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से 800 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव करने से खरपतवारों का नियंत्रण होता है।

Qly lj{kk

भूरा, काला, पीला रतुआ, करनाल बंट एवं कंडुआ रोग आदि गेहूँ की फसल में प्रमुखता से पाये जाते हैं। फसल को इन रोगों से बचाने के लिये रोगी पोधे को जड़ से उखाड़ कर अलग कर देना चाहिए या जला देना चाहिये जिससे रोग को कम व नष्ट किया जा सके।

mit

गेहूँ की फसलों की उपज उनकी किस्मों व उगाये जाने वाले स्थान पर निर्भर करती है। गेहूँ की औसत उपज पर्वतीय क्षेत्रों में लगभग 40 से 45 कुन्तल प्रति हैक्टर होती है।

इस तरह किसान भाई विशेषकर जो पर्वतीय कृषक बंधु है गेहूँ की वैज्ञानिक विधि से खेती करके अधिक से अधिक उपज प्राप्त कर उसे उचित मूल्य पर बाजार में बेचकर अधिक आय अर्जन कर परिवार की आय में बृद्धि करने के साथ–साथ अपने परिवार को स्वस्थ रखने में मदद करें तथा उपरोक्त सस्य क्रियाओं को अपनाकर इस फसल से अधिक से अधिक उत्पादन व आय प्राप्त किया जा सकता है।

बीज उत्पादन हेतु गेहूँ में उगाएं खीरा–ककड़ी वर्गीय सब्जियों की अंतः रिले फसल

jkt Un flg Nkdj[1]] Lkj'k pn jk.kk[2] ,o foukn dekj ifMrk[2]
[1]xg vu lèkku fun'kky;] [2]ÒkjRkh; Ñf"k vu lèkku lLFkku {k=h; LV'ku] djuky] gfj;k.kk

निरन्तर बढ़ती जनसंख्या के कारण न केवल खाद्य एवं अन्य पदार्थों की मांग बढ़ती जा रही है बल्कि बढ़ते शहरीकरण के कारण भू–जोत क्षेत्र के आकार व खेती के लिए उपलब्ध भूमि की भी कमी हो रही है। ऐसी परिस्थितियों में आवश्यक है कि हमारे किसान भाई प्रति ईकाई क्षेत्र से एक वर्ष में अधिक उत्पादन व लाभ लेकर अपनी आय में वृद्धि करें। इसके लिए उन्हें विभिन्न फसलों व फसल प्रणालियों का चयन इस प्रकार करना होगा कि उनके खेत की उर्वराशक्ति बनी रहे तथा साथ ही अधिक मूल्य वाली फसलों को सम्मिलित करने से उनकी सकल आय में वृद्धि हो। बहु–फसलीय कृषि के अंतर्गत रिले खेती फसल उत्पादन की एक परंपरागत एवं महत्वपूर्ण पद्धति है। इस पद्धति में आधार फसल की कटाई से पहले आधार फसल की खड़ी अवस्था में ही खेत में अगली फसल की बुआई की जाती है तथा अनुवर्ती फसल उत्तेरा फसल कहलाती है। रिले खेती के उपयोग से किसान सीमित संसाधनों (भूमि, समय, पानी, श्रम आदि) एवं कम लागत से फसल लेने में सक्षम होता है। उत्तर भारत में गेहूँ की फसल एक बड़े भू–भाग में उगाई जाती है। मार्च–अप्रैल माह में गेहूँ की कटाई उपरांत अधिकांश खेत खाली रहते हैं जिनमें जून–जूलाई माह में खरीफ फसल की बुआई की जाती है। गेहूँ कटाई उपरांत तथा खरीफ फसल की बुआई के समय (जून–जूलाई) तक 80–90 की अवधि के दौरान किसान भाई खीरा–ककड़ी वर्गीय सब्जियों की फसल उगाकर अपनी आमदनी बढा सकते हैं। उत्तर भारत में साधारणतया आलू, मटर, सरसो, तोरिया आदि फसल लेने के उपरांत जनवरी के अंत से लेकर मार्च के प्रथम पखवाड़े तक खीरा–ककड़ी वर्गीय सब्जियों की बुआई की जाती है तथा फसल की पैदावार अप्रैल के अंत से जून तक चलती है। दिसंबर या जनवरी माह में पॉली हाउस में थैलियों में तैयार किये गए पौधों को फरवरी के अंत में (पाला पड़ने का खतरा समाप्त होने पर) रोप कर इन फसलों की अगेती फसल ली जाती है। कई किसान भाई गेहूँ की कटाई उपरांत थैलियों में तैयार किये गए पौधों को खेत में रोपकर या बीज लगाकर इन फसलों की खेती करते हैं परंतु जून माह में बरसात आने के कारण खरबूज, तरबूज, पेठा, टिंडा आदि सब्जियों की गुणवत्ता में कमी आने से आर्थिक हानि होने की सभांवना बनी रहती है। गेहूँ में ककड़ी–वर्गीय सब्जियों की अंतर–रिले फसल उत्पादन विधि के उपयोग से किसान भाई जून के प्रथम पखवाड़े तक इन सब्जियों की फसल सफलतापूर्वक ले सकते हैं।

fjy Qly mRiknu fofèk

इस पद्धति में गेहूँ (आधार फसल) की बुआई के समय ही खीरा–ककड़ी वर्गीय सब्जियों (उत्तेरा फसल) के लिए भी योजना बना ली जाती है। गेहूँ में ककड़ी–वर्गीय सब्जियों की अंतर–रिले फसल

उत्पादन विधि के अंतर्गत गेहूँ की बीजाई हेतु खेत तैयार करते समय खेत में 3.5 से 4.0 मीटर की दूरी पर 45 से. मी. चौड़ी व 30–40 से.मी. गहरी नालियां बना कर छोड़ देते हैं। नालियों के बीच में गेहूँ की बीजाई की जाती है। गेहूँ की बीजाई (अक्तूबर–दिसंबर) से लेकर मार्च के प्रथम पखवाड़े तक इन नालियों को खाली रखते हैं। गेहूँ की बीजाई से लेकर फरवरी तक इन नालियों का उपयोग तोरीया, सरसो, पालक, मेथी, मूली, गाजर आदि अंतः फसल उगाकर भी किया जा सकता है। गेहूँ की कटाई से 20–25 दिन पहले इन नालियों के किनारों पर थैलियों में तैयार किये गए घीया/लौकी, तोरी, करेला, खीरा, तरबूज, खरबूज, ककड़ी, कद्दू/सीताफल, चप्पनकद्दू, टिण्डा आदि सब्जियों के पौधों को रोप दिया जाता है। इस विधि में पौध तैयार करने हेतु 15 से.मी. लम्बे तथा 10 से.मी. चौड़े पॉलीथीन (100–200 गॉज) के थैलों में मिटटी, रेत व खाद का मिश्रण बनाकर भर लेते हैं। प्रत्येक पॉलीथीन बैग की तली में 4–5 छोटे छेद कर लिए जाते हैं तथा मिश्रण भरते समय यह ध्यान रखते हैं कि प्रत्येक पॉलीथीन बैग के किनारे पर 2–3 से.मी. जगह पानी देने के लिए खाली रहे। इन थैलों में बीज बोने से पहले बीज को फफूंदीनाशक से उपचारित कर लें। प्रत्येक थैले में 2–3 उपचारित बीज जनवरी–फरवरी माह में लगाए जाते हैं। बीजों की बुआई के बाद थैलों में हल्की सिचांई फब्बारे की मदद से करते हैं। बीज अंकुरित होने पर प्रत्येक थैले में एक स्वस्थ पौधा छोड़कर बाकी पौधे निकाल देते हैं। पॉलीथीन बैग में तैयार किये जाने वाले पौधों को ठंड से बचाने हेतु आवश्यकतानुसार पॉलीथीन घर का प्रयोग किया जाता है। गेहूँ की कटाई से 45–50 दिन पहले नालियों के अंदर व उपर उगे हुए गेहूँ को काट लेते हैं तथा नालियों के किनारों पर 50–60 से.मी. की दूरी पर थावले बना लेते हैं तथा नालियों को खरपतवार रहित कर लिया जाता है। गेहूँ की कटाई से 20–25 दिन पहले खेत की नालियों में थैलों की पोलीथीन को ब्लेड से काटकर व पौधों को मिटटी सहित निकालकर उचित दूरी पर तैयार गड्ढ़ों/थालों में रोप दिया जाता है। पौध रोपाई के तुरंत बाद हल्की सिंचाई करना आवश्यक होता है। फसल को नालियों पर बीज द्वारा भी लगाया जाता है। पाला पड़ने का खतरा समाप्त होने पर (फरवरी के अंत में) गेहूँ की कटाई से 40–45 दिन पहले नालियों में तैयार किए गए थावलों में 2–3 उपचारित बीज लगाए जाते है। खेत में पौधे लगाने की इस विधि को नाली तथा थाले विधि कहते हैं तथा इसमें खाद व उर्वरकों का प्रयोग, निराई–गुड़ाई

गेहूँ–घीया/लौकी की अंतः रिले फसल के लिए छोड़ी गई जगह

गेहूँ खरबूज की अंतः रिले फसल (गेहूँ कटाई के 30 दिन उपरांत)

गेहूँ खरबूज की अंतः रिले फसल (गेहूँ कटाई के 30 दिन उपरांत)

व सिंचाई आदि क्रियाएं नालियों के अंदर ही की जाती है। इस विधि में नालियों के बीच की जगह में सिंचाई नहीं की जाती जिससे फल स्वरूप गीली मिट्टी के सम्पर्क में नहीं आते तथा खराब होने से बच जाते हैं। अंतः रिले फसल उत्पादन की इस विधि द्वारा हम गेहूँ की फसल कटने के बाद खेत का उपयोग ककड़ी वर्गीय सब्जियों के फल एवं बीज उत्पादन हेतु सफलतापूर्वक कर सकते हैं।

खीरा वर्गीय सब्जियों के बीज उत्पादन के लिए सब्जी उत्पादन सबंधी सामान्य क्रियाओं के साथ–साथ, निम्न प्रस्तुत क्रियाओं को भी ध्यान में रखना चाहिए।

खेत का चयन : बीज उत्पादन के लिए ऐसी भूमि का चुनाव करना चाहिए जिसमें पानी के निकास की उचित व्यवस्था हो एवं फसल के लिए प्रर्याप्त मात्रा में जैविक पदार्थ उपलब्ध हो। बीज का खेत खरपतवारों व अन्य फसलों के पौद्यों से मुक्त होना चाहिए। खेत की मृदा, रोगों व कीटों से मुक्त होनी चाहिए। बीज खेत में पिछले एक या दो वर्षों में उसी फसल की कोई दूसरी किस्म नहीं उगायी गई हो। यदि वही किस्म उगाई जानी है तो यह सुनिशिचित करें कि उसकी आनुवंशिक शुद्ध ता बीज प्रमाणीकरण के मानकों के अनुरुप हो।

किस्म का चयन : जिन किस्मों की बाजार में मांग हो या जिन्हें किसान अपने लिए उगाना चाहता है, उन्हें प्राथमिकता दी जानी चाहिए। किस्म अच्छी पैदावार देने वाली हो। किस्म में रोग रोधिता, अगेतापन आदि वांछित गुण होने चाहिए। छांटी गई किस्म उस क्षेत्र विशेष की जलवायु के अनुकूल होना चाहिए ताकि उत्पादन के समय आनुवंशिक परिवर्तन की सभांवना ना रहे। चयनित किस्म का शुद्ध बीज किसी अनुसंधान केन्द्र, बीज निगम, कृषि विश्वविद्याालय या सुस्थापित बीज फर्म से प्राप्त करना चाहिए।

खेत की तैयारी व बीज की बुआई : अच्छे बीज अंकुरण व खरपतवार नियंत्रण के लिए खेत को अच्छी प्रकार से तैयार करें। खेत में एक जुताई मिट्टी पलट हल से व 3 या 4 जुताई हैरो या कल्टीवेटर से करें। प्रत्येक जुताई के बाद सुहागा लगाएं ताकि मिट्टी भुरभुरी हो जाए। गेहूँ हेतु खेत की तैयारी के समय प्रति हैक्टर 200–250 कुंतल की दर से भली भांति सड़ी हुई गोबर की खाद मिलाई जाती है। इसे बुआई से 20–25 दिन पूर्व खेत में मिला दिया जाता है। आखिरी जुताई के बाद खेत में पूर्व से पश्चिम की और 45 सें. मी. चौड़ी व 30–40 सें. मी. गहरी नालियाँ बना लें।

पृथक्करण : आनुवंशिक रुप से शुद्ध बीज प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि दो किस्मों के बीच में एक निर्धारित दूरी अवश्य रखी जाए। अधिकतर बेलवाली सब्जियों के पौधे उभयलिंगाश्रयी/मोनोशियस होने के कारण इनमें पर–परागण आवश्यक है जिसमें मधुमक्खियों व अन्य कीट परागण में मदद करते है। मधुमक्खियों व अन्य कीटों द्वारा समूचित मात्रा में परागण होने से इन फसलों में उत्तम गुण वाले फलों एवं बीजों की कुल पैदावार बढ़ जाती है। प्रायः सभी ककड़ी–वर्गीय फसलों में न्यूनतम पृथक्करण दूरी आधार बीज के खेत से 1500 मीटर तथा प्रमाणित बीज की फसल के खेत

से 800 मीटर रहनी चाहिए। खरबूज, फूट एवं ककड़ी की फसल में आपस में सकंरण हो जाता है इसलिये इन फसलों को साथ–साथ नहीं लगाना चाहिए। बीज खेत में फूल आना आरंभ होने के समय मधुमक्खियों के 2–4 बक्से प्रति एकड़ की दर से रखें।

अवांछित पौधों को निकालना : कोई भी वह पौध जो लगायी गई किस्म के अनुरूप लक्षण नहीं रखता है उसे अवांछनीय पौध माना जाता है तथा उसे जड़ से उखाड़ कर नष्ट कर देना चाहिए या फिर गड्ढ़े में दबा देना चाहिए। जिन पौधों में बीमारी, खासकर बीज से उत्पन्न होने वाली बीमारी हो तो उन्हें भी खेत से हटाना जरूरी है। अवांछनीय पौधे निकालने वाले व्यक्ति को किस्म के लक्षणों का भली भांति ज्ञान होना चाहिए जिससे की वह अवांछनीय पौधों को पौध की बढ़वार, पत्तों व फूलो के रंग–रूप, फूलों के खिलने का समय, फल के रंग–रूप आदि के आधार पर पहचान सके। अवांछनीय पौधों का निरीक्षण कई बार करना चाहिए जैसे पौधों की शाकीय बढ़वार की अवस्था, फूलों के खिलने के समय, फल के बनने व पकने की अवस्था के समय। हर अवस्था पर जो भी अवांछनीय पौधे मिले उन्हें निकालते रहना चाहिए।

बीज फसल की कटाई : बीज उत्पादन हेतु फलों को समय से तोड़कर उनसे बीज निकालना ठीक रहता है। इसमें असावधानी बरतने पर बीज की उपज व गुणवत्ता में कमी आती है। करेला व चिचिंडा के फल पकने पर जब लाल रंग के हो जाते है तभी उन्हें तोड़ा जाता है। लौकी व तोरई के सूखे फलों को तोड़ा जाता है। फूट के फल जब फटने लगें तब तोड़े जाते हैं। तरबूज व खरबूज में फलों के बेल से जुड़ने के स्थान पर विलग परत विकसित हो जाती है। जिसके कारण फल आसानी से अलग हो जाते हैं तथा भूमि के संपर्क में रहने वाले भाग का रंग सफेद से हल्का पीला हो जाता है।

cht fudkyuk o l[kkuk

साधारणतया खीरा वर्गीय सब्जियों में फलों को बीच से काटकर बीज निकाले जाते हैं। फिर उन्हें साफ पानी से धो लेते हैं।

खीरे व खरबूज के फलों में परिपक्वता को प्राप्त बीजों के उपर जिलेटिन परत का आवरण पाया जाता है। इनके बीज निकालने हेतु गूदा सहित बीजों को किसी बर्तन में पानी भरकर उसमें 1 से 4 दिन के लिए किण्वन होने तक रख दिया जाता है। किण्वन का समय बीजों के परिपक्वता स्तर एवं मिश्रण के तापमान पर निर्भर करता है। मिश्रण को प्रतिदिन ठीक प्रकार से हिलाते रहें। इससे किण्वन की गति एक समान रहकर बीज बदरंग होने से बचते हैं। किण्वन की सफल समाप्ति पर बीज को जल से प्रक्षालन करें। किण्वन क्रिया के त्वरित गति से संचालन हेतु अम्ल उपचार या क्षारिय उपचार प्रचलित है। एक टन फल गूदा बीज –मिश्रण में लगभग दस लीटर व्यापारिक स्तर का अम्ल मिलाकर आधे घंटे तक हिलाते चलाते हैं। इसके तत्काल बाद पूर्व वर्णित विधि से जल

प्रक्षालन, छनाई तथा बीज शुष्कन की क्रिया अपनायें। बीज सामग्री अम्ल में अधिक देर तक डूबी ना रहे अन्यथा बीज अंकुरण क्षमता पर विपरीत प्रभाव का भय रहता है। किण्वन क्रिया में लोहे के पात्र का उपयोग निषेध है अन्यथा बीज बदरंग हो जाते है। क्षारीय उपचार में 420 ग्राम साधारण वाशिंग सोडा 5 लीटर उबलते पानी में मिलाकर समान आयतन के बीज गूदा–मिश्रण में मिलाये। क्षारीय मिश्रण को ठंडा करके मिट्टी के बर्तन में रात भर स्थिर रखें। अगले दिन सभी भारी स्वस्थ बीज पात्र के तल पर मिलेंगें तरबूज के बीजों में किण्वन की आवश्यकता नहीं होती। गूदे को बीज के साथ कुचलकर जल प्रक्षालन से पृथक किया जा सकता है। उत्तम भारी बीज पात्र के तल में बैठ जाते हैं तथा गूदामय अन्य कचरा ऊपर तैरने लगता है। सीताफल और पेठे में फलों को टुकड़ों में काटकर बीज को गूदे के साथ निकालते हैं तथा हाथ से मसलकर पानी में धोते हैं। घीया और तोरी के फलों से बीज निकालने हेतु उन्हें सुखने के लिये रखते हैं। बीज निष्कासन के बाद उनको पतली परत में फैलाकर धूप में तब तक सुखाते हैं जब तक कि नमी की मात्रा 8 से 10 प्रतिशत ना आ जाए।

cht HkaMkj.k

बीज भंडारण के दौरान बीजों को कीटों से बचाव हेतु ईमिडाक्लोप्रिड चूर्ण 0.1 ग्राम या मेलाथियान चूर्ण 0.5 ग्राम दवा प्रति किलो बीज की दर से तथा फफूंदी जनक रोगों से बचाव हेतु थीरम या कार्बोंडाजिम चूर्ण 2 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचार करें। बीजों को बाजार मांग के अनुसार वांछित मात्रा में पैकेटों में भरा जाता है। बीजों को नमी रहित, ठंडे स्थानों पर भंडारण हेतु रखा जाता है।

lkfj.kh 1- dn~nw oxhZ; lfCt;ksa dh mUur fdLesa

Qly	fdLe
खीरा	पूसा उदय, पोइनसैट, जापानी लोंग ग्रीन, खीरा–75, खीरा–90,
तरबुज	अरका मणिक, सुगरबेबी, आसाहि यामातो, इम्प्रूवड शिप्पर, दुर्गापुरा मीठा, दुर्गापुरा केसर, दुर्गापुरा लाल, अरका ज्योति
पेठा	अरका सुर्यामुखी, अरका चदंन, पूसा विश्वास, पूसा विकास, नरेन्दर अमृत, काशी हरित, अजाद कद्दू–1
खरबूज	पूसा मधुरस, पूसा शर्बती, हिसार मधुर, हरामधु, पजांब सुनहरी, पजांब रसीला, दुर्गापुरा मधु, काशी मधु, अरका जीत, अरका राजहंस, आर.एम.–42, आर.एम.–50, एन.डी.एम.–15
घीया / लौकी	पूसा समर प्रोलीफिक राउंड, पूसा समर प्रोलीफिक लौंग, पूसा नवीन, पूसा संदेश, पूसा समृद्धि, पूसा संतुष्टि, सम्राट लौंग
करेला	पूसा दो मौसमी, पूसा विशेष, अरका हरित, प्रिया, कोयबंटूर लौंग ग्रीन, कल्याणपुर बारामासी, पंजाब–14
तोरी	पूसा सुप्रिया, पूसा चिकनी, पूसा स्नेह, पूसा नसदार, पजांब सदाबहार, अरका सुमित, कोंकण हरिता, सतपूतिया

lkfj.kh 2- dnnw oxhZ; lfCt;ksa esa cht nj] Qyu ,oa cht dh iSnkokj

Qly	cht nj ¼fdyks izfr ,dM½	ifDr ls ifDr ,oa ikS/ks ls ikS/ks dh nwjh ¼l-eh-½	Qyu dh vkSlr iSnkokj izfr ,dM ¼dqUry½	cht vkSlr iSnkokj izfr ,dM ¼fdyks½
खीरा	0.50—0.75	150—200 x 60—90	40—60	40—50
तरबुज	1.5—2.0	250—350 x 90—100	120—150	75—80
पेठा	1.5—2.0	200—300 x 100—150	120—150	100—150
खरबूज	0.75—1.0	150—250 x 60—75	60—80	60—70
घीया / लौकी	1.5.2.0	200—300 x 75—100	100—120	150—200
करेला	1.5—2.0	150—250 x 60—90	40—60	100—130
तोरी	1.5—2.0	150—250 x 60—75	100—120	100—120

lkfj.kh 3- dnnw oxhZ; lfCt;ksa ds izeq[k dhV ,oa jksx

dhV@jksx	y{k.k	fu;a=.k
माहू या चेपा	यह कीट पत्तियों व तनो से रस चुसता है।	ईमिडाक्लोप्रिड या मेलाथियान 0.5 मि.लि. दवा प्रति लिटर पानी की दर से छिड़काव करें।
फल भेदक मक्खी	मक्खी का मैगट फलों के अंदर गूदे को खाकर नष्ट कर देता है।	डाइमिथोएट 30 ई.सी. अथवा मेलाथियान 50 ई.सी. अथवा मिथाइल डेमेटोन 25 ई.सी. 1 मि.लि. दवा प्रति लिटर पानी की दर से छिड़काव करें।
लाल कद्दू भृंग	प्यूपा छोटे पौधों के तनों में जमीन के पास से छेद कर देते हैं जिससे पौधा सूख जाता है। व्यस्क पौधों की पत्तियों को खाकर नष्ट करता है।	
कॉलर रौट	भूमि की सतह के पास पौधों के तनों पर भूरे रंग के पनीले तथा नरम धब्बे बनते हैं। पौधे पीले पड़कर सूख जाते हैं।	ट्राइकोडर्मा विरिडी 4 ग्राम अथवा कार्बेंड. ाजिम 2 ग्राम प्रति किलो बीज की दर से उपचार करें।
फल विगलन	यह रोग भूमि के सम्पर्क में आने वाले फलों में अधिक होता है। संक्रमित फलों पर रूई के समान फफूंद जाल फैल जाता है।	फलों को भूमि के सम्पर्क में आने से बचाया जाना चाहिए। डाइथेन एम—45 के 0.25 प्रतिशत के धोल का छिड़काव करें।
चूर्णी फफूंद	इसके लक्षण पत्तियों व तनों की सतह पर सफेद या धुंधले धूसर सूक्ष्म आभा युक्त धब्बों के रूप प्रगट होते हैं जो बाद में सफेद चूर्ण के रूप में फैल जाते हैं।	15—15 दिन के अंतर पर कैराथेन के 0.05 प्रतिशत के धोल का छिड़काव करें।

पूर्वोत्तर भारत में सिंचाई की परंपरागत बाँस टपका विधि

t; d: ik.M;] vu|t d|ekj] j.kèkhj fl|g ,o| je'k pUn
xg| vu|lèkku fun'kky;] djuky

भारत में कुल खेती योग्य भूमि का मात्र 36 प्रतिशत ही सिंचित है। देश में जल के कुल उपयोग का 83 प्रतिशत जल का प्रयोग खेती में होता है तथा शेष जल का उपयोग 5,3,6 और 3 प्रतिशत क्रमशः घरेलू, औद्योगिक, ऊर्जा एवं अन्य क्षेत्र में होता है। दिनो दिन बढ़ती जनसंख्या तथा जल के अलग–अलग उपयोगों के बीच बढ़ती प्रतिस्पर्धा के वजह से सिंचित खेतों के रकबा को बढ़ाने तथा खेती के लिए जल की उपलब्धता में कमी की वजह से इस बहुमूल्य संपदा पर आने वाले समय में बहुत ही दबाव रहेगा। सिंचाई की प्रचलित विधि से इसके उपयोग एवं परिवहन में कुछ न कुछ नुकसान भी होता है। अतः मानव के लिए अत्यंत उपयोगी एवं बहुमूल्य संपदा, जल की कमी को देखते हुए इसके संरक्षण एवं उपयोग के दौरान होने वाले नुकसान से बचना अति आवश्यक है तथा इस पर विचार करना समयानुकूल एवं तर्क संगत है।

टपका विधि एक ऐसी सिंचाई व्यवस्था प्रणाली है जिसमें जल के परिवहन एवं उपयोग में होने वाले नुकासान से पूर्णतया बचा जा सकता है जिससे जल का उपयोग दक्षता से होता है। सर्वप्रथम टपका विधि का उपयोग जर्मनी में 1869 में किया गया परन्तु पेट्रोकेमीकल उद्योग के विकास से प्लास्टिक की पाईप का उपयोग प्रचलन में आने से इसका उपयोग बढ़ने लगा। सन् 1960 के बाद इजराइल, उत्तरी–अमेरिका एवं ऑस्ट्रेलिया में फसलों में इसका बड़े पैमाने पर उपयोग शुरु हुआ। भारत में भी विगत 15–20 वर्षों में टपका विधि से सिंचाई में बहुत बढ़ोत्तरी हुई है।

Ikkphu Hkkjr e| ty HkkMkj.k ,o| mi;kx

भारत में वैदिक काल से ही वर्षा के जल को संरक्षित कर भंडारित करने उसे साफ रखने एवं आवश्यकतानुसार उसका समुचित उपयोग करने की परंपरा रही है। नदियों के किनारे ही सभ्यताओं का विकास हुआ और विभिन्न तरीकों से जल का उपयोग किया गया। बाँधों, चैनलों का निमार्ण एवं नदियों के प्रवाह मोड़ने आदि का उपाय करके जल का न्यायोचित सदुपयोग किय गया। सिंधु घाटी की सभ्यता के दौरान शहरों के लिए जल संचय, वितरण, उसके उपयोग एवं विकास की उत्कृष्ट व्यवस्था थी।

,frgkfld oÙkkr

भारत में अति प्राचीन काल से जल की महत्त्व को पहचाना गया था एवं उसके प्रबंधन की व्यवस्था भी रही है।

- ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में पत्थर से निर्मित बांध बलूचिस्तान एवं कच्छ में थे।

- ईसा पूर्व 3000–1500 के दौरान सिंधु–सरस्वती सभ्यता के समय वर्षा जल को इकट्ठा करने के लिए अनेकों जलाशयों का निर्माण तथा प्रत्येक घर में जल के लिए कुआँ की व्यवस्था थी।
- ईसा पूर्व 321–291 में चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन काल में बाँध, झील एवं सिंचाई की प्रचुर व्यवस्था का पुरातात्विक साक्ष्य उपलब्ध है। इसी दौरान कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जल का संचय करके सिंचाई के व्यवस्था का वर्णन भी मिलता है।
- ईसा पूर्व पहली शताब्दी में इलाहाबाद के नजदीक श्री गवेपुरा में गंगा के बाढ़ के पानी को संचय कर उसका सदुपयोग किया जाता रहा है।
- ईसा के बाद, दूसरी शताब्दी में भी चोल वंश के शासन काल में कावेरी के पानी के प्रवाह को बदल करके उसका समूचित उपयोग किया जाता रहा है जो आज भी कार्य कर रहा है।
- ईसा के बाद, 11 वीं शताब्दी में भोपाल के राजा भोज ने बहुत बड़े आकार का कृत्रिम झील (65,000 एकड़) का निर्माण कराया था जो कि झरना एवं नदियों के जल प्रवाह से भरता था।
- ईसा के बाद, 12वीं शताब्दी के दौरान कश्मीर में सिंचाई की व्यवस्थित प्रणाली का प्रचलन था जिसका वर्णन कल्हन ने बड़े ही रोचक अंदाज में अपने पुस्तक राजतरंगिनी में किया है।

टपका विधि का प्रचलन भारत में प्राचीन काल से रहा है, इसका प्रमाण प्राचीन ग्रंथों में मिलता है जिसमें यह उल्लेखित है कि घर के अहाते में तुलसी के पौधे के ऊपर घड़ा लटका दिया जाता था, उसमें छोटे से छिद्र या सुराख कर दिया जाता था जिससे घड़े के पेंदी से धीरे–धीरे बूंद–बूंद पानी टपकते रहता था।

Ckk¡l vkèkkfjr Vidk fofèk ,oa bldh dk;Z iz.kkyh

आज भी मेघालय के खासी एवं जयन्तिया पहाड़ियों तथा पूर्वोत्तर राज्यों के अन्य जैसे अरुणाचल प्रदेश के पश्चिम सियांग के जन जातीय लोग परंपरागत बाँस के द्वारा टपका विधि का बहुत ही कुशलता के साथ प्रयोग करते हैं। यह एक बेहद कारगार एवं उपयोगी विधि है जो 200 वर्षों से भी ज्यादा समय से चली आ रही है। यहाँ के जन–जातीय लोगों ने अपने अनुभव के आधार पर इसे खेती के लिए विकसित किया है। जिस स्थान पर पानी की कमी हो, मृदा में जल रोकने की क्षमता कम हो, भूजल का चैनल के द्वारा इस्तेमाल में दिक्कत हो, सुखा मौसम हो, जमीन पथरीली एवं उबड़–खाबड़ या ऊंची–नीची हो एवं बोई जाने वाली फसल में दूसरी फसलों

के तुलना में कम जल की आवश्यकता हो, ऐसी स्थिति में सिंचाई बाँस आधारित टपका विधि से अत्यंत लाभकारी, उपयुक्त एवं उपयोगी है। इस तरह की मुख्य फसल जैसे पान की बेल, सुपारी, काली मिर्च एवं अन्य बागवानी वाले फसले जिसमें इस विधि से बूंद–बूंद करके पानी फसलों के जड़ के पास धीरे–धीरे भरते रहता है। यह इसलिए संभव हो पाता है कि बाँस के पाईप के अंतिम टुकड़ों पर, उपयुक्त स्थान पर छिद्र कर दिया जाता है। जल का प्रवाह मूल स्रोत से पौधे तक प्रवाहित होने के दौरान रास्ते में बिना किसी नुकसान के पहुंचता है। वस्तुतः इसमें जल का स्रोत ऊँचाई पर स्थित होता है और इस परंपरागत तकनीक में गुरुत्वाकर्षण की शक्ति का प्राकृतिक रुप से प्रयोग किया जाता है यही कारण है कि झील एवं पहाड़ी नदियों का जल टेढ़–मेढ़े और पहाड़ी की तेज ढलान से होते हुए प्राकृतिक प्रवाह नीचे स्थित खेत/पौधा/सीढ़ीनुमा खेतों में जल निर्वाध गति से प्रवाहित होता रहता है। इस प्रणाली विधि से लगभग 15–20 लीटर पानी की प्रति मिनट की दर से उपलब्ध हो जाता है। सिंचाई के इस प्रणाली को विकसित करने के लिए उपलब्ध स्थानीय बाँस आदि का प्रयोग किया जाता है।

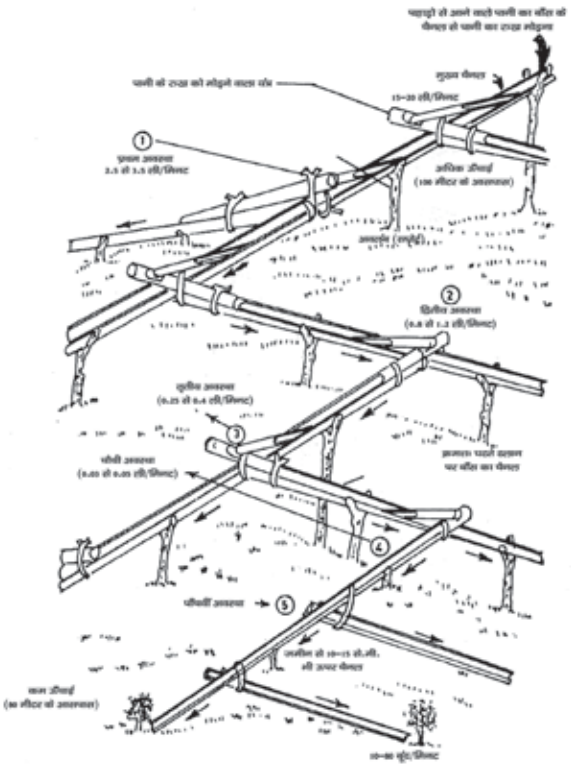

आकृति – 1: बाँस टपका सिंचाई प्रणाली में पानी के वितरण का सिद्धांत

lkexh ,oa fuekZ.k

इस परंपरागत प्रणाली को बनाने के लिए थोड़ी सामग्री की आवश्यकता होती है। छोटी दाव (एक प्रकार का स्थानीय छोटी कुल्हाड़ी), अलग–अलग ब्यास के बाँस (ऊपर से नीचे की तरफ बीच से फाड़ा हुआ या विभाजित) का टुकड़ा, छोटे टुकड़े भी, लकड़ी का स्टैंड या आधार जो कि बाँस के पाईप को सहारा दे, रेशेदार रस्सी या बेंत वाली रस्सी तथा 2 श्रमिक एवं 15 दिन का समय। आवश्यकतानुसार समय एवं सामग्री की मात्रा घटाई या बढ़ाई जा सकती है। जल के स्रोत से अंतिम स्थान जहां सिंचाई करनी है, 5–6

भाग (आकृति–1) में इसका निमार्ण होता है। 15–20 लीटर पानी चैनल में प्रवाहित है तथा 20 से 80 बूंद प्रति मिनट पानी एक पौधे के जड़ के पास अनवरत रुप से गिरता रहता है।

इस कार्य के लिए जो सबसे नजदीक का जल स्रोत है उसे पहचान कर ढलान देखी जाती है जहां से होकर बाँस के पाईप का चैनल गुजरना होता है। बाँस के पाईप की लंबाई जरुरत के हिसाब से काटते हैं

और स्रोत के नजदीक सबसे अधिक मोटे ब्यास वाले विभाजित बाँस के टुकड़े का उपयोग किया जाता है ताकि अधिक मात्रा में जल बाँस के चैनल में आ सके उसके बाद क्रमशः छोटे ब्यास वाले बाँस के टुकड़ों का प्रयोग किया जाता है। सभी बाँस के पाईपों को लकड़ी या बाँस के आधार पर इस प्रकार रखते हैं जिससे जमीन से एक या दो मीटर ऊँचा रहे। चैनल के सबसे अंतिम पाईप को जमीन से 10–15 से.मी. ऊपर रखते हैं (आकृति–1)। रेशे वाला रस्सी या बेंत की रस्सी से स्टैण्ड के साथ प्रत्येक जगह बाँस के पाईप को बाँध देते हैं एवं जहां पर जल के प्रवाह को मोड़ना है बहुत छोटे–छोटे दो फीट की लम्बाई वाले विभाजित बाँस के टुकड़ों का इस्तेमाल करते हैं। तकरीबन एक हैक्टर की सिंचाई के लिए इस प्रणाली को विकसित करने में 15 दिन तक का समय लगता है तथा इसे 2 मजदूर इस कार्य को पूरा करते हैं। एक बार जब यह प्रणाली कार्य करने लगती है तो इससे लगातार 24 घण्टे सिंचाई की जा सकती है।

ckl vkèkkfjr Vidk fofèk dh fo'k"krk,a

यह विधि मनुष्य के बौद्धिक संपदा, कौशल और प्रतिभा का एक अति सुंदर उदाहरण है। जिसमें उपलब्ध जल स्रोत का कुशल प्रबंधन और भविष्य के लिए जल को संरक्षित करने के सोच को दर्शाता है। कृषि विकास के क्रम में निश्चित रुप से यह एक रोमांचकारी घटना है।

- स्थानीय सामग्री का इस्तेमाल होने की वजह से किसानों को निर्माण सामग्री खरीदना नहीं पड़ता है। अतः इसके निर्माण में लागत नाम मात्र है।
- इसके रख–रखाव एवं मरम्मत पर खर्च नगण्य है तथा थोड़ी देखभाल से सिंचाई की यह प्रणाली अच्छा कार्य करती है।
- इसके दोहरे फायदे हैं, एक तो जल का रिसाव नहीं होता है, दूसरा कम पानी में फसलों का उत्पादन होता है।
- जमीन उबड़–खाबड़ होने की वजह से पहाड़ी के उपर के भाग से नीचे के भाग में स्थित खेत तक जल के प्रवाह को मोड़ कर जल पहुंचाना किसी भी अन्य विधि से एक खर्चीला एवं पर्यावरण के दृष्टिकोण से गलत कार्य है। पथरीली एवं तेज ढलान पर कई जगह पर जल को ले जाने के लिए कुछ भी करना असंभव सा है। ऐसी स्थिति में यह विधि सर्वोतम है।
- चूंकि जल को बाँस के पाईप द्वारा ले जाया जाता है, इसलिए यह विधि अप्रत्यक्ष रुप से जंगलों को बने रहने में मदद करता है क्योंकि इस विधि में जंगल की कटाई, पेड़ों/पहाड़ियों की कटाई नहीं होती है तथा मिट्टी की खुदाई भी नहीं होती है। जबकि अन्य विधियों में ये कार्य करने पड़ते हैं। अतः यह विधि पर्यावरण हितैषी होने के साथ–साथ स्थायी खेती के लिए प्रेरित करता है। जबकि झूम (अस्थायी) खेती में जंगल का पूरा सफाया हो जाता है। अतः पहाड़ों में सिंचाई की यह व्यवस्था प्राकृतिक संपदा के संरक्षण में अप्रत्यक्ष रुप से मददगार है।

mi lgkj

स्थानीय जन–जाति लोग/किसानों के पास देसी/पारंपरिक तकनीकी ज्ञान का भंडार है जिनका उपयोग कर संसाधनों का संरक्षण बहुत कम लागत में संभव है। पूर्वोतर भारत के जन–जाति लोगों के पास भी खेती के अनेकों परंपरागत विधियां एवं ज्ञान है जो कि आज भी प्रचलन में हैं और अच्छा कार्य कर रही हैं, पर्यावरण के लिए अधिक सुरक्षित एवं प्रासंगिक हैं।

आज के समय में बहुत लोग सोचते हैं कि परंपरागत तकनीकों से कम उत्पादन मिलता है तथा ये असामयिक एवं अप्रासंगिक है। परन्तु यह मनोभाव सर्वथा अनुचित है। यह तो परंपरागत तकनीकी ज्ञान का अवमूल्यन है। आवश्यकता इस बात कि है कि हम परम्परागत तकनीकी ज्ञान के भंडार को आधार बनाकर ऐसी नूतन तकनीक विकसित करें जो पर्यावरण हितैषी, सामयिक तथा टिकाऊ हो जिससे किसानों को वैकल्पिक तकनीकों को चुनने का अवसर हो। जो लोग नूतन वैज्ञानिक ज्ञान के सृजन में लगे हों, उन्हें परंपरागत तकनीकी ज्ञान के महत्व को समझते हुए इसे कार्य में अपनाना चाहिए। अतः वैज्ञानिकों एवं प्रसार कार्यकर्त्ताओं को परंपरागत तकनीकी ज्ञान को कृषि अनुसंधान एवं प्रसार में सम्मिलित करना चाहिए, जिससे हमारे पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी का आर्थिक रुप से एवं व्यवहारिक रुप से समुचित दोहन हो सके। इस संदर्भ में ध्यान देने योग्य बात यह है कि आधुनिक विज्ञान में परंपरागत तकनीकी ज्ञान को समावेश की प्रचुर संभावनायें हैं।

राजस्थान में जल संसाधन परिदृश्य एवं जल संरक्षण की वैज्ञानिक तकनीकें

,l vkj oek[1]] vkj d cjok[1] ,o jkt iky ehuk[2]

[1]Ñf"k foKku dUn] cUnh] mn;iqj] jktLFkku

[2]xg vuqlèkku funs'kky;] djuky] gfj;k.kk

जल, जीव जन्तु व वनस्पति के अस्तित्व का मूल आधार है। जल सभी विकासात्मक गतिविधियों के लिए मूलभूत आवश्यकता है। अतः जल संसाधनों का संरक्षण एवं सुव्यवस्थित प्रबंधन सुनियोजित विकास का अभिन्न अंग है।

भारतीय उपमहाद्वीप के उत्तर पश्चिमी भाग में स्थित राजस्थान एक सूखा प्रदेश है जहां साल में औसतन 400 से 500 मि.मी. वर्षा होती है। राजस्थान क्षेत्रफल की दृष्टि से देश का सबसे बड़ा प्रान्त है जिसका कुल क्षेत्रफल 342.52 लाख हैक्टर है। जिसमें से 257 लाख हैक्टर क्षेत्र कृषि योग्य भूमि है जो कि देश के कुल कृषि योग्य क्षेत्र का 11 प्रतिशत है। वर्षा की अपर्याप्तता व राज्य में जलवायु की विविधता के कारण राजस्थान देश का सर्वाधिक सूखा प्रदेश है। वर्तमान में राज्य में उपलब्ध सतही जल की मात्रा लगभग 158.60 लाख एकड़ फीट है जो कि देश के कुल उपलब्ध सतही जल संसाधनों का 1.16 प्रतिशत है। देश के कुल सिंचित क्षेत्र का मात्र 9.2 प्रतिशत क्षेत्र राजस्थान में है। इस प्रकार राजस्थान जल की कमी वाला राज्य है। राज्य का दो तिहाई भाग खेती के लिए वर्षा पर आश्रित है अतः राजस्थान में वर्षा जल को अधिक से अधिक मात्रा में संग्रहित करना अति आवश्यक है ताकि सतही जल की उपलब्धता बढ़ने के साथ–साथ भू–जल स्तर भी बढ़ सके। उपलब्ध जल एवं वर्षा जल के उपयोग हेतु योजना बनाकर पानी का संरक्षण करते हुए सिंचाई सुविधाओं में विस्तार करना राज्य के विकास के लिए अपरिहार्य है।

भू–जल राजस्थान में जल का प्रमुख स्त्रोत है लेकिन भू–जल स्तर में तीव्र गति से आई गिरावट राजस्थान राज्य के लिए गंभीर समस्या बन गई है। भू–जल ग्रामीण क्षेत्रों में सिंचाई का सबसे बड़ा और लाभकारी स्त्रोत है। हर वर्ष राजस्थान की लगभग 51 प्रतिशत आबादी को उपलब्ध पेयजल के घटते स्तर की समस्या का सामना करना पड़ता है।

lkj.kh 1- jkTkLFkku jkT; e o"kk ,o ty dh fLFkfr

क्षेत्रफल	3,42,239 वर्ग कि.मी.
औसत वर्षा	531 मि.मी.
शुद्ध वार्षिक भू–जल उपलब्धता (2009)	10.38 अरब घनमीटर
कुल औसत उपयोग	14.52 अरब घनमीटर

संदर्भ : जन स्वास्थ्य अभियान्त्रिंकी विभाग, राजस्थान सरकार

जलवायु परिवर्तन के कारण प्रदेश में वर्षा के वितरण की मात्रा, मानसून आगमन एवं वापसी के समय में परिवर्तन हो रहा है तथा भूमि में उपलब्ध जल की मात्रा भी प्रभावित हो रही है। प्रत्येक तीसरे–चौथे वर्ष में पश्चिमी राजस्थान के अधिकांश क्षेत्रों में सूखे की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। यह तथ्य निम्न सारणी से स्पष्ट है।

lkj.kh 2- jkT; e l[k dh iujkofr l iHkkfor fty

l[k dh iujkofÙk ¼o"kk e½	iHkkfor fty
प्रत्येक तीसरे वर्ष	बाड़मेर, जैसलमेर, जोधपुर, सिरोही
प्रत्येक चौथे वर्ष	अजमेर, बीकानेर, बून्दी, डुंगरपुर, श्रीगंगानगर
प्रत्येक पांचवे वर्ष	अलवर, बासवाड़ा, भीलवाड़ा, चुरू, जयपुर, झुनझुनु, पाली, सवाई माधोपुर
प्रत्येक छठे वर्ष	चित्तोड़गढ़, धोलपुर, करोली, झालावाड़, कोटा, उदयपुर
प्रत्येक सातवे वर्ष	टोंक
प्रत्येक आठवे वर्ष	भरतपुर

संदर्भ : जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग, राजस्थान सरकार वार्षिक प्रतिवेदन, 2009

राज्य में गिरते भू–जल स्तर के कारण– भूमिगत जल भण्डार में कमी के मुख्य कारण निम्नांकित है;

- भूमिगत जल का सिंचाई के लिए अत्यधिक दोहन किया जाना।
- भूमिगत जल भण्डारण हेतु प्राकृतिक पुनर्भरण क्रिया में अवरोध डालना जैसे– अनियंत्रित चराई, भूमि का सीमेन्टीकरण, जंगल नष्ट करना इत्यादि।
- कम वर्षा की स्थिति में भी अधिक सिंचाई चाहने वाली फसलें उगाना।
- खेत व नालों द्वारा वर्षा जल का व्यर्थ बह जाना।
- जल संचय के लिए बने तालाब, चेक डैम या अन्य संरचनाओं की मरम्मत, रख–रखाव एवं सुरक्षा पर ध्यान न देना।
- भूमि एवं नमी संरक्षण उपायों की किसानो द्वारा उपेक्षा एवं संरचनाओं के रख–रखाव के प्रति लापरवाही।
- उन्नत कृषि यंत्रों, उन्नत सिंचाई प्रणाली (फब्बारा एवं बूंद–बूंद सिंचाई) एवं उन्नत सस्य तकनीक अपनाने में रूचि की कमी।
- प्राकृतिक संसाधनों विशेषकर पानी एवं वन संसाधनों के प्रबन्ध में कुशलता का अभाव ।
- कुआँ, तालाब एवं नाले की सफाई के प्रति उदासीनता ।

पिछले कुछ दशकों से भू–जल का बड़े पैमाने पर दोहन हुआ है। दोहन के मुकाबले पुनर्भरण की दर बहुत कम होने के कारण भू–जल स्तर तेजी से गिर रहा है। जिन क्षेत्रों में भू–जल का स्तर

एक निश्चित सीमा से नीचे चला गया है उन्हें "डार्क जोन" कहते हैं। राजस्थान में कुल 239 में से 198 ब्लॉक ''डार्क जोन'' घोषित हो चुके हैं।

lkj.kh 3- Hk&ty nkgu d fofHkUu pj.kk e vR;fèkd nkgu g, Cykd

ldVi.k	166 Cykd
अर्द्ध संकटपूर्ण	25 ब्लॉक
सुरक्षित	16 ब्लॉक
लवणीय	31 ब्लॉक
खारा	10 ब्लॉक
अधिसूचित	34 ब्लॉक

संदर्भ : जन स्वास्थ्य अभियांत्रिकी विभाग, राजस्थान सरकार

भू–जल के अत्यधिक दोहन से जल की गुणवत्ता भी खराब होती है। जिस पानी में फ्लोराइड, नाइट्रेट और टीडीएस जैसे रसायन की मात्रा ज्यादा होती है वह जल पीने योग्य नहीं होता है। भू–जल के कृत्रिम पुनर्भरण के लिए वर्षा जल का संग्रहण किया जा सकता है जिससे भू–जल का स्तर बढ़ सके तथा भविष्य में जल की उपलब्धता सुनिश्चित की जा सके।

ty lj{k.k dh oKkfud rduhd

वर्षा के असमान वितरण के कारण फसल अवधि के मध्य या अन्त में प्रायः सूखे की स्थिति आ जाती है अतः कृषि के लिए जल का विशेष महत्व है। यदि जल संरक्षण द्वारा फसलों को एक जीवन रक्षक सिंचाई उपलब्ध हो जाए तो कृषक अपनी फसल का अच्छा उत्पादन ले सकते हैं इसलिए इस बहुमूल्य संसाधन का सरंक्षण तथा कुशल उपयोग कर प्रति इकाई जल से अधिक लाभ प्राप्त करना नितान्त आवश्यक हो गया है। इस सीमित तथा बहुमूल्य संसाधन के संरक्षण एवं कुशल उपयोग हेतु नवीनतम कृषि तकनीकों को अपनाना अति आवश्यक है। निम्न कृषि तकनीके जल संरक्षण में अति महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं।

1- fMXxh&QCckjk }kjk ty lj{k.k

जल के समुचित उपयोग एवं सिंचित क्षेत्र में वृद्धि हेतु नहरी क्षेत्रों में डिग्गी–फब्बारा योजना राजस्थान सरकार द्वारा संचालित है। नहर चालू होने के समय उपलब्ध अतिरिक्त पानी को डिग्गी में एकत्रित कर फब्बारा और ड्रिप/टपका सिंचाई पद्धति द्वारा सिंचाई हेतु काम में लिया जा सकता

है। नहरी क्षेत्र में किसानों को डिग्गी निर्माण के साथ–साथ फब्वारा सेट/ड्रिप/माइक्रोस्प्रिंकलर लगाने पर सरकार द्वारा अनुदान भी उपलब्ध है।

fMXxh fuekZ.k dk ykHk

1. नहर के अतिरिक्त पानी को एकत्र किया जा सकता है।
2. जब भी जरूरत हो इस पानी का उपयोग सिंचाई हेतु किया जा सकता है।
3. पशुओं के लिए पानी हमेशा उपलब्ध रहेगा।
4. कम पानी से अधिक क्षेत्र में सिचाई सम्भव है।
5. नहर के पानी पर निर्भरता कम होगी।

vuqnku dh ik=rk

1. जो कृषक गंगा नहर, भाखड़ा, सिद्धमुख एवं इन्दिरा गांधी नहर परियोजना क्षेत्र या चम्बल सिंचित क्षेत्रों में भूमि का स्वामित्व रखते हों अनुदान के पात्र होंगें।
2. कृषकों के पास कम से कम दो बीघा जमीन होनी चाहिए।
3. क्षेत्र की मुख्य नहर एवं सह नहर चालू हालात में होनी चाहिए।

vuqnku

कृषकों द्वारा चार लाख लीटर एवं इससे अधिक क्षमता की पक्की डिग्गी का निर्माण करने पर लागत का 50 प्रतिशत अथवा अधिकतम रूपये 200 लाख जो भी कम हो अनुदान देय है। पक्की डिग्गी निर्माण पर ही अनुदान देय है। यह कार्यक्रम राज्य के श्रीगंगानगर, हनुमानगढ़, जैसलमेर, बीकानेर, कोटा, बांरा, बून्दी जिलों में क्रियान्वित किया जा रहा है।

2- [ksr rykbZ ¼QkeZ ikS.M½ }kjk ty laj{k.k

भारी मिट्टी एवं कठोर निचली सतह वाली भूमि में वर्षा जल को एकत्रित कर सिंचाई के काम लेने हेतु खेत तलाई कारगर है। खेत तलाई योजना भारी मृदा वाले क्षेत्रों में अधिक उपयोगी है क्योंकि इससे

1. वर्षा का जल संरक्षित होगा।
2. खेत से जल बहकर व्यर्थ नहीं जायेगा।
3. भूमि में जल स्तर बढ़ेगा।
4. फसल उत्पादन बढ़ाने में प्रभावकारी है।

[kr rykbZ dk fuekZ.k

खेत तलाई खेत के सबसे निचले बिन्दु पर होना चाहिए जिससे कि खुदाई के लिए कम से कम मेहनत एवं लागत लगे और वर्षा का अधिकतम पानी इसमें बहकर एकत्र हो जाए। खेत तलाई हेतु काली व भारी संरचना की मिट्टी वाली भूमि सर्वोत्तम है क्योंकि इसमे पानी का रिसाव बहुत कम होता है। खेत तलाई हेतु स्थान का चयन करते समय यह भी ध्यान रखा जाय कि भूमि की निचली सतह कठोर हो। तलाई में ढलान 1:1 का तथा निकलने वाली मिट्टी 1–1 मीटर का गैप (वर्त) देकर मेंड़ बन्दी करनी चाहिए। पानी के भराव के लिए प्रवेश तथा जरूरत से ज्यादा पानी आने पर निकास की व्यवस्था जरूरी है। जिससे कि तलाई टूटे नहीं। खेतों में जहां ढलान कम है वहां प्रवेश तथा निकास एक साथ हो सकता है।

किसान अपनी सुविधा के अनुसार विभिन्न आकार के तलाई बना सकते हैं। तलाई का आकार कम से कम 20x20x3 (1200 घनमीटर) या इससे बड़ा होने पर ही अनुदान देय है। फार्म पौण्ड का निर्माण पर अधिकतम 50,000 रूपये का अनुदान देय है।

3- ty gkt }kjk ty lj{k.k

सिंचाई जल का आवश्यकतानुसार उपयोग सुनिश्चित करने हेतु जल हौज बहुत उपयोगी संसाधन है। हौज का निर्माण कुएं के पास ऊंचे स्थान पर किया जाता हैं। जल हौज का निर्माण करने से अत्यधिक गहराई वाले भूमिगत जल को 15–20 हार्स पॉवर की मोटर से लिफ्ट कर हौज में आसानी से भरा जा सकता है तत्पश्चात् हौज में उपलब्ध जल को 3–5 हार्स पॉवर के बूस्टर से फव्वारा सिंचाई हेतु काम में लेने पर ज्यादा संख्या में नोजल चलाए जा सकते हैं जिससे सिंचित क्षेत्र में भी बढ़ोत्तरी होती है। इसके अतिरिक्त ऐसे स्रोत जहां सिंचाई हेतु बिजली रात के समय उपलब्ध होती है ऐसे क्षेत्रों में जल हौज निर्माण कर कुएं अथवा नलकूप का पानी हौज में एकत्रित कर दिन के समय आवश्यकतानुसार सिंचाई हेतु काम में लिया जा सकता है।

ty gkt dk fuek.k

जल हौज का निर्माण खेत के सबसे उपरी बिन्दु पर स्थानीय उपलब्ध सामग्री द्वारा किया जा सकता है। हौज की क्षमता इतनी होनी चाहिए जिसमें 8 से 10 घण्टे का पानी भर सके इसके लिए लगभग 40x30x6 फीट के आकार का हौज निर्माण किया जा सकता है। हौज निर्माण में फरमे अथवा ईट, सीमेंट व बजरी का उपयोग करके 20 से. मी. चौड़ाई की सीमेन्ट, कंकरीट की सीधी दीवार, तल में 8 इंच मोटाई का पक्का फर्श अथवा 2–3 जगह पर निकासी रखना जरूरी है जिससे गुरूत्व बल से पानी की निकासी हो सके और सम्पूर्ण खेतों की सिंचाई हो सके। हौज की दीवारो में हल्की ढलान तथा दीवारों के बाहरी तरफ मिट्टी का सहारा देने से दीवारों को मजबूती मिलती है। हौज निर्माण हेतु लोहे के सरियों का उपयोग हौज के कोनो में करना जरूरी है जिससे हौज में दरार न पड़े। हौज का निर्माण भूमि की सतह से ऊपर होना चाहिए तथा दीवारे टूटे नहीं इसलिए चारो तरफ से मिट्टी की कच्ची दीवार बनवाना चाहिए। राजस्थान के अजमेर, दौसा, सीकर, झुनझुनु, बीकानेर, चूरू, जोधपुर, बाड़मेर, नागौर, जालौर, पाली, जैसलमेर एवं सिरोही जिलों में जल हौज निर्माण को प्रोत्साहित करने हेतु राज्य सरकार द्वारा अनुदान दिया जाता है। 7200 घन फीट (40x30x6फीट) आकार के हौज अथवा 2 लाख लीटर से अधिक क्षमता का हौज निर्माण करने हेतु सभी कृषकों को अधिकतम 50,000 रूपये अथवा लागत का 50 प्रतिशत जो भी कम हो अनुदान देय है।

4- flpkbZ ikbZi ykbu }kjk ty lj{k.k

सिंचाई हेतु उपलब्ध सीमित जल को कच्ची नालियों द्वारा खेत तक ले जाने से जल का 20 से 25 प्रतिशत अपव्यय होता है। इस अपव्यय को कम करने एवं अधिक क्षेत्र में सिंचाई करने हेतु सिंचाई पाईप लाईन से करना चाहिए ताकि जल के अपव्यय को बचाया जा सके। पाईप लाईन द्वारा सिंचाई को प्रोत्साहित करने हेतु राजस्थान सरकार अनुदान भी प्रदान करती है। सिंचाई पाईप लाईन द्वारा खेत तक पानी ले जाने के लिए पी.वी.सी./एच.डी.पी.ई. पाईप के क्रय हेतु कृषकों को

उनकी आवश्यकता के अनुरूप सभी कृषकों को लागत का 50 प्रतिशत या अधिकतम 15000 रूपये जो भी कम हो अनुदान के रूप में देय है।

5- l{e fl pkbl }kjk ty lj{k.k

राजस्थान में देश के कुल जल संसाधन का मात्र 1 प्रतिशत ही उपलब्ध है। उपलब्ध जल का 80 प्रतिशत से अधिक उपयोग कृषि क्षेत्र में सिंचाई हेतु किया जाता है। अतः यह आवश्यक है कि सिंचाई हेतु प्रयुक्त जल का समुचित उपयोग किया जा सके। परम्परागत सिंचाई पद्धति की 25 से 30 प्रतिशत कार्यकुशलता के बजाय सूक्ष्म सिंचाई संयंत्रों से 50 से 95 प्रतिशत तक की कार्यकुशलता सम्भव है। सिंचाई जल की उपयोगिता बढ़ाकर जल की बचत करने के उद्देश्य से राजस्थान में शूक्ष्म सिंचाई योजना वर्ष 2006–07 से क्रियान्वित की जा रही है।

शूक्ष्म सिंचाई योजना में फब्बारा एवं रेन गन संयंत्र स्थापित करने पर पात्र लघु एवं सीमान्त कृषकों को निर्धारित इकाई का 60 प्रतिशत तथा अन्य कृषकों हेतु 50 प्रतिशत अनुदान देय है। एक हैक्टर 75 मि.मी. फब्बारा एवं रेन गन मॉडल हेतु क्रमशः 15789 रुपये एवं 17285 रूपये इकाई लागत का प्रावधान है। एक कृषक द्वारा अधिकतम 5 हैक्टर हेतु 19220 रूपये का अनुदान लिया जा सकता है।

टपका/ड्रिप एक नई और उन्नत सिंचाई विधि है जिसके प्रयोग से सिंचाई जल की पर्याप्त मात्रा में बचत की जा सकती है। ड्रिप सिंचाई पद्धति एक अधिक आवृति वाला ऐसा सिंचाई तंत्र है जिससें जल को पौधों के मूल क्षेत्र के आस–पास पौधों की आवश्यकतानुसार दिया जाता है। कम अन्तराल पर सिंचाई करने से पौधों की जड़ो में जल तनाव नहीं रहता तथा पौधों की वृद्धि भी अधिक होती हैं। इस प्रकार ड्रिप सिंचाई द्वारा जल की विभिन्न प्रकार की पारम्परिक हानियों जैसे गहन रिसाव, अप्रवाह तथा वाष्पीकरण आदि से बचा जा सकता है। यह विधि मृदा के प्रकार, खेत के ढलान, जल के स्रोत और किसानों के ज्ञान के अनुसार अधिकतर फसलों के लिए अपनाई जा सकती है। फसलों की पैदावार बढ़ाने के साथ–साथ इस विधि से उपज की उच्च गुणवत्ता, रसायन एवं उर्वरकों

का दक्ष उपयोग, खरपतवारों में कमी और जल की अधिक मात्रा में बचत की जा सकती है। जल और रसायनों की पर्याप्त मात्रा में बचत के साथ रसायनों के लगातार प्रयोग से होने वाले प्रदूषण से पर्यावरण को भी बचाया जा सकता है। बूंद–बूंद सिंचाई द्वारा 20–40 प्रतिशत तक जल की बचत हो सकती है। शूक्ष्म सिंचाई योजना में ड्रिप व मिनी स्प्रिंकलर संयंत्र स्थापित करने पर पात्र कृषकों को इकाई लागत का 70 प्रतिशत या अधिकतम तय सीमा तक मॉडल के अनुसार अनुदान देय है। न्यून अन्तराल फसलों हेतु ड्रिप पर अनुदान सीमा 90 प्रतिशत देय है।

6- e'nk ueh lsUlj }kjk ty laj{k.k

सिंचाई तंत्र में मृदा नमी सेन्सर का उपयोग कर जल संरक्षण किया जा सकता है। मृदा नमी सेन्सर एक उपकरण होता है जिसे कि मृदा में लगा देने पर भूमि में उपस्थित नमी का आंकलन किया जा सकता है। इससे सिंचाई का सही समय पता लग जाने के कारण बार–बार सिंचाईयों में बर्बाद होने वाले पानी की बचत की जा सकती है साथ ही सिंचाई हेतु पम्पिंग खर्च तथा जल के साथ उर्वरक के बहकर नष्ट होने को भी कम किया जा सकता है। मृदा में नमी की मात्रा का पता लगने पर फसलों में क्रान्तिक अवस्था में सिंचाई करना सुगम एवं सम्भव हो जाता है जिससे फसल के उत्पादन में भी वृद्धि होती है। सिंचाई जल बचत हेतु सेन्सर का उपयोग फसल, सब्जी एवं फल उत्पादन हेतु किया जा सकता है।

Qly icU/ku }kjk ty laj{k.k

1- Qly ,oa fdLeksa }kjk ty laj{k.k

सूखा राजस्थान के लिए एक सतत समस्या है। अतः बारानी क्षेत्रों में ऐसी फसल का चयन करें जिनकी जल मांग कम हो एवं कम समय में अपना जीवन चक्र पूर्ण करके उपज देती हो तथा सूखा सहन करने की सक्षम हो जैसे ज्वार, बाजरा, अरहर, ग्वार, तारामीरा, कुसुम, तिल इत्यादि। फसल विशेष में ऐसी किस्मों का चयन करें जो अल्पावधि सूखा सहनशील अन्य किस्मों की तुलना में अधिक उपज भी दे सके।

Lkkj.kh 4- fofHkUu Qlyksa dh lw[kk ds ifr lgu'khy fdLesa

फसल	किस्में
ग्वार	आर.जी.सी. 1003, आर.जी.सी. 1002, आर.जी.सी.1017, आर.जी.सी. 1031, आर.जी.सी.1038, आर.जी.सी.1055
बाजरा	एच.एच.बी. 67, आर.एच.बी. 90, आर.एच.बी 121, आर.एच.बी 127
ज्वार	सी.एस.एच. 6, सी.एस.एच. 9,सी.एस.बी.15
तिल	आर.टी. 125, आर.टी.46
सोयाबीन	पी.एस. 16, जे.एस. 95–60, जे.एस. 93–05
मोठ	आर.एम.ओ. 40, विकास

फसल	किस्में
चावला	आर.सी. 19, आर.सी. 101, एफ.एस. 68
मूंग	आर.एम.जी. 62, आर.एम.जी. 268, आर.एम.जी. 344, आर.एम.जी. 492
उड़द	कृष्णा, टी–9
अरहर	टी. 21, प्रभात, ग्वालियर 3
कुल्थी	के.एस. 2

2- [kjirokj fu;=.k }kjk t y lj{k.k

खरीफ की फसल में खरपतवारों का प्रकोप अधिक होता है तथा खरपतवारों का घनत्व अधिक होने पर मृदा से नमी का ह्रास अधिक होता है। क्योंकि खरपतवार फसलीय पौधों की अपेक्षा ज्यादा मात्रा में वाष्पोत्सर्जन करते हैं। जिससे तेजी से भूमि में नमी का ह्रास होता है। खरपतवारों एवं फसलों की जल सम्बन्धी आवश्यकता का अध्ययन बताता है कि गेहूँ का वाष्पोत्सर्जन गुणांक 550 एवं वाष्पोत्सर्जन क्षमता 1.82 है। जबकि गेहूँ में पाये जाने वाले खरपतवार बथुआ का वाष्पोत्सर्जन गुणांक 638 एवं वाष्पोत्सर्जन क्षमता 3.94 है. अर्थात् बथुआ गेहूँ की तुलना में ज्यादा मात्रा में भूमि से नमी का ह्रास करता है। अतः खरपतवारों का खरपतवारनाशी या निराई–गुड़ाई द्वारा सही समय पर नियंत्रण आवश्यक है। निराई–गुड़ाई एक तरह की पलवार (मल्च) का कार्य करती है इससे भूमि की उपरी परत का सम्पर्क नीचे की परत से टूट जाता है एवं वाष्पीकरण की दर कम हो जाती है। अतः निराई–गुड़ाई भूमि से पानी के ह्रास को रोकती है।

3- cht&ipkj }kjk t y lj{k.k

बाजरा, ग्वार, मोठ के बीजों को बुआई से पूर्व थायो यूरिया जैव नियामक के 0.1 प्रतिशत घोल (1 लीटर पानी में एक ग्राम थायो यूरिया) में 5–6 घण्टे भिगोकर छाया में सुखाने के पश्चात बुआई करने से सूखा सहन करने की क्षमता में वृद्धि पाई गई है। थायो यूरिया एक सल्फाहाईड्रल रसायन है तथा सूखे की स्थिति में पौधों के अन्दर सल्फाहाइड्रील समूह की मात्रा में कमी होने के कारण प्रोटीन की क्रियाशीलता कम हो जाती है इसलिए थायो यूरिया के छिड़काव से पौधों को सूखे से बचाना सम्भव है। बाजरा में फूल आने की अवस्था पर 0.1 प्रतिशत (1 ग्राम प्रति लीटर पानी) थायो यूरिया के घोल का छिड़काव उपयोगी है। इसी प्रकार सरसो की फसल में 500 पी.पी.एम. (0.5 ग्राम प्रति लीटर पानी) थायो यूरिया के घोल का 50 प्रतिशत फूल आने की अवस्था पर तथा उसके 20 दिन बाद छिड़काव करना भी सूखे से बचाता है।

4- mfpr le; ij cqvkbZ

जिन क्षेत्रों में जल की कमी हो उन क्षेत्रों में समय पर बुआई कर उत्पादन में वृद्धि सम्भव है। मानसून आने से पूर्व खेत की अच्छी तैयारी कर लें तथा मानसून आते ही बुआई आरम्भ कर देना चाहिये इस प्रकार रबी फसलों की बुआई भी संरक्षित नमी पर कर सकते हैं। जल्दी पकने वाली

फसले जैसे मूंग, उड़द व लोबिया आदि कटने के बाद खेत में प्रर्याप्त जुताई कर नमी का संरक्षण करते हुए रबी फसलों की बुआई शीघ्रता से कर देना चाहिए। इससे पलेवा में उपयुक्त होने वाली सिंचाई को कम किया जा सकता है ।

5- yEch tM okyh Qlyk dh cvkb

बारानी दशाओं में लम्बी जड़ वाली फसलें लेना काफी लाभदायक रहता है। क्योंकि इनमें भूमि की गहराई से जल का उपयोग कर सूखा सहन करने की क्षमता होती है। इसके लिये ज्वार, कपास, अरण्डी, अरहर आदि फसलें उपयुक्त हैं।

6- mi;Dr Qly&pØ

बारानी क्षेत्रों में फसल–चक्र में ऐसी फसलों का समावेश करना चाहिए जिन्हें पानी की कम आवश्यकता पड़े और खेत की उर्वराशक्ति तथा पानी रोकने में सहायक हो इसलिए दलहनी व तिलहनी फसलों का फसल–चक्र में समावेश आवश्यक होता है।

7- [kkn ,o moj d icèku

बारानी क्षेत्रों में उर्वरकों को कतारों में बीज के नीचे डालना चाहिए जहां नमी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हो अतः उर्वरकों को उचित गहराई पर उपयोग करने के लिये बीज एवं उर्वरक एक साथ डालने वाली ड्रिल का उपयोग भी कर सकते हैं। खरीफ मौसम में उर्वरकों की पूरी मात्रा, नत्रजन की आधी मात्रा बुआई के समय तथा बची हुई नत्रजन की मात्रा उचित समय पर देना चाहिए। रबी मौसम में उर्वरक की पूरी मात्रा बुआई के समय देनी चाहिए। बारानी क्षेत्रों में उर्वरकों का पर्णीय छिड़काव करना भी लाभदायक रहता है तथा गोबर की खाद व कम्पोस्ट देने से मृदा की जल धारण क्षमता बढ़ती है।

8- vUrorh Qly

शुष्क क्षेत्रों में अन्तर्वर्ती खेती का विशेष महत्व है। इससे शुद्ध फसल की अपेक्षा उपलब्ध जल, स्थान, प्रकाश व पोषक तत्वों का सदुपयोग होता है तथा सूखा, बीमारी, कीट आदि के भयंकर प्रकोप से यदि एक फसल मर जाती है तो दूसरी फसल से कुछ न कुछ प्राप्त हो जाता है। जैसे अरण्डी के साथ दलहन की अंतर्वर्ती खेती करने से नमी का संरक्षण किया जा सकता है।

9- Qly vkPNknu

भारी वर्षा में मृदा को बचाने के लिये भूमि पर पौधों का आवरण बहुत अच्छा उपाय है। पौधों का आवरण उन परिस्थितियों में सम्भव है जहां ढलान 2 से 3 प्रतिशत तक ही होता है। घनी फसलों और चौड़े पत्तों वाली फसलें उगाने से अच्छा आवरण उत्पन्न होता है और मृदा के कणों को वर्षा की

बूंदों से सीधे सम्पर्क में आने से रोका जा सकता है। साथ ही कम पानी वाली परिस्थिति में मृदा से अवांछनीय वाष्पीकरण की क्रिया को भी कम किया जा सकता है।

10- QCl ;k mBh D;kjh i)fr

रेज्ड बेड प्लान्टर का प्रयोग मेंड़ो पर गेहूँ या अन्य फसलें बोने के लिए किया जाता है। इस यंत्र में फरों ओपनर के साथ–साथ क्यारियां और नालियां बनाने हेतु तीन फरों ओपनर व दो बेड मेकर होती है जिससे खेत की मिट्टी भुरभुरी हो जाये तथा उसमें ढेले न रह पाये। बीज एवं उर्वरक डालने के लिये इस यंत्र में भी फर्टी सीड ड्रिल की तरह ही खाद एवं बीज डालने वाले उपकरण लगे रहते हैं। उर्वरक दर एवं बीज दर निर्धारित करनें के लिये इसे भी सीड ड्रिल की तरह ही समायोजित किया जाता है। मेंड़ पर बोई गयी फसल बीज, खाद तथा पानी की बचत के कारण कम लागत में तैयार की जा सकती है। मेंड़ों के ऊपर मिट्टी सूखी होने के कारण खरपतवार के बीज जो मेंड़ों की उपरी सतह में होते हैं, उग नहीं पाते अतः खरपतवारों (गेहूँ के मामा) का प्रकोप कम होता है।

फसल में पानी मेंड़ों के बीच बनी नालियों द्वारा दिया जाता है जिससे पूरे खेत की मिट्टी गीली नहीं होती और पौधा कोशिकाओं द्वारा आवश्कतानुसार पानी लेता रहता है। इस विधि से फसल बोने पर 30 प्रतिशत तक पानी की बचत होती है तथा खरपतवार कम होते हैं। इस विधि द्वारा खेत फसल में जल भराव की स्थिति में नालियों द्वारा फालतू पानी की निकासी करने की सुविधा रहती है। मेंड़ों पर गेहूँ या अन्य फसल बोने से पौधे गिरते नहीं हैं। इस विधि में यांत्रिक विधि द्वारा भी खरपतवार नियन्त्रण किया जा सकता है।

जल संरक्षण के माध्यम से फसलों में जल उपयोग दक्षता में वृद्धि

ekeFkk ,p ,e] fxjh’k pUn ik.M;] d.kZe oxdV’k]
jktUn flg ,o foukn frokjh
xg vuqlèkku funs'kky;] djuky] gfj;k.kk

जल उपयोग दक्षता (डब्ल्यू यू ई) शब्द का अभिप्राय सीमित जल का बुद्धिमतापूर्वक प्रयोग कर अन्न का उच्च उत्पादन करना है। उच्च जल उपयोग दक्षता के प्रयोग से सिंचाई के साधनों में न्यूनतम जल का प्रयोग करके अधिक से अधिक फसल उपज प्राप्त किया जा सकता हैं। जल उपयोग दक्षता का मूलतः विकास कृषि अभियंतओं ने उत्पादन एवं सिंचित जल के अनुपात द्वारा सिंचाई खर्च का आंकलन के उद्देश्य से किया था। जल उपयोग दक्षता सिंचाई क्षमता के मापने का एक महत्वपूर्ण मापदंड है। जल उपयोग दक्षता शब्द को बाद में मृदा वैज्ञानिकों एवं कृषि वैज्ञानिकों ने वृहत् स्तर पर कृषि विज्ञान में प्रयुक्त किया जिसमें शुष्क क्षेत्रों में सिंचित फसल उत्पादन को भी सम्मिलित किया गया है।

पादप कार्यिकी विशेषज्ञों ने यह पाया है कि यह शब्द पत्ती स्तर पर गैसों के आदान–प्रदान जहाँ डब्ल्यू यू ई को कार्बन स्थीरीकरण एवं उत्स्वेदन के रुप में परिभाषित किया गया है। इसका प्रयोग फसलों में विभिन्न स्तर पर होता है यथा एक पर्ण से खेत स्तर तक जल उपयोग दक्षता का अध्ययन वृहत् पौध जनसंख्या में कठिन तरीका है क्योंकि इसमें कार्य बोझ एवं खर्च भी सम्मिलित होता है।

Qlyk e t y mi;kx n{krk ikDdyu dh fofèk

- ग्रेवी मेट्रीक विधि जिसमें सम्पूर्ण पौध स्तर पर एक दिए हुए समय में कुल जैव द्रव्यमान का संचयन अनुपात कुल जल का उत्सवेदन
- प्रकाश संश्लेषण मीटर का प्रयोग करके स्वांगीकरण दर एवं रंध्र प्रवाह के अनुपात द्वारा जल उपयोग दक्षता को गणना किया जाता है।
- एक सामान्य वैकल्पिक विधि द्वारा जल उपयोग दक्षता के खेत में मुख्य पर्ण क्षेत्र का मापन। मूंगफली के फसल में का ऋणात्मक संबंध जल उपयोग दक्षता से है।
- द्रव्यमान स्प्रेक्ट्रोफोटोमीटर के द्वारा अन्न या पर्ण में कार्बन आइसोटोप के विभेदीकरण द्वारा भी जल उपयोग दक्षता का मापन किया जाता है।

जल उपयोग दक्षता के अध्ययन में क्रांतिकारी परिवर्तन, रंध्र गतिकी के उच्च समझ, गैसों का आदान–प्रदान एवं प्रकाश संश्लेषित कार्य जो कि कार्बन आइसोटोप के विभेदीकरण का प्रतीक है और यह एक आनुवंशिक सूचक वृहत् पौध स्तर पर जल उपयोग दक्षता के लिए अधिकांश मामलों में निम्न कार्बन आइसोटोप विभेदीकरण का मापन अन्न एवं पत्तियों में उच्च जल उपयोग दक्षता से सहसंबंधित

है। कार्बन आइसोटोप विभेदीकरण विधि ने जल उपयोग दक्षता अनुसंधान को बढ़ाया है तथा इसने पौध–जनन एवं आनुवंशिकी विभिन्नता के परिपेक्ष्य में अत्यधिक तथ्यों को उपलब्ध कराया है।

खेत के अन्दर जल उपयोग दक्षता में वृद्धि के तरीके

ty l;j{k.k

1. बंद संवाहक माध्यम के प्रयोग से जल वितरण के ह्रास को रोकना।
2. मध्याह्न फब्बारा सिंचाई से बचना जिससे जल का सीधा वाष्पोत्सर्जन ना हो।
3. अत्यधिक सिंचाई से होने वाले जल टपकाव के ह्रास को रोकना।
4. पलवार एवं अंतर पंक्ति रेखाओं के माध्यम से खुली भूमि से वाष्पोत्सर्जन को रोकना।
5. खरपतवार से होने वाले वाष्पोत्सर्जन को रोकना एवं खेतों में अंतर–पंक्ति रेखाओं को शुष्क रखना तथा खरपतवार को नियन्त्रित रखना।

Qly&fodkl e; of)

1. क्षेत्र के अनुसार फसलों का चयन करना जो व्यवसायिक रुप से भी उपयुक्त है।
2. फसल की बुआई एवं कटाई उचित समय पर करना।
3. कीट, परजीवी एवं रोगों के नियंत्रण का समुचित प्रबंध करना।
4. जैविक खादों के प्रयोग का अधिक से अधिक प्रसार करना एवं आवश्यक पोषक तत्वों को सिंचाई जल में मिला कर प्रयोग करना।
5. दीर्घकालिक मृदा संरक्षण को अपनाना।
6. खेतों को जल की जितनी आवश्यकता हो उतनी ही सिंचाई करना जिससे जल के ह्रास को रोकना। सिंचाई के समय मौसम की दशा एवं फसल की टिकाऊ अवस्था का भी ध्यान रखकर सिंचाई करना।
7. भूमिगत जल का बृद्धिमतापूर्वक प्रयोग करना जिससे उनका स्तर भी ना गिरे।

फसल जल उपयोग में सुधार लाने के लिए जैवप्रौद्योगिकी दृष्टिकोण

fofn'kk Bkdqj] lkfu;k ';kjku] vuhrk ehuk ,oa jk[kk efyd
xg vu lèkku fun'kky;] djuky] gfj;k.kk

कृषि विश्व के कई हिस्सों में उपलब्ध ताजा जल संसाधन का प्रमुख (75–80 प्रतिशत) उपयोगकर्ता है। वर्तमान में फसल पैदा करने के लिए अधिकांश जल वर्षा आधारित मिट्टी की नमी से प्राप्त होता है और विकासशील देशों में 60 प्रतिशत उत्पादन गैर सिंचित कृषि से है। यद्यपि सिंचाई दस प्रतिशत कृषि जल प्रदान करती है, और 20 प्रतिशत खेत इसके अंतर्गत आते हैं, परन्तु यह अधिक मात्रा में फसल उत्पादन को बढ़ाता है और खाद्य सुरक्षा का सुधार करता है क्योंकि सिंचित भूमि की उत्पादकता वर्षा आधारित भूमि से तीन गुणा अधिक है। खाद्य एवं कृषि संगठन (एफ.ए.ओ.) ने भविष्य में 93 विकासशील देशों की सिंचित भूमि में 45 लाख हैक्टर (कुल 242 लाख हैक्टर 2030 में) का कुल विस्तार बताया है और कृषि जल निकासी में लगभग 14 प्रतिशत वृद्धि 2000–2030 के दौरान खाद्य मांग की पूर्ति के लिए प्रक्षेपित किया है। जैविक–जल बचत को जैविक उपायों के उपयोग से फसल जल की खपत में कमी के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। यह कृषि क्षेत्र में पानी को बचाने के प्रयासों का केन्द्र बिंदू है। नोबल पुरस्कार विजेता नारमन ई. बॉरलॉग (2000), ने कहा था, "दुनिया की बढ़ती आबादी के लिए सीमित जल उपलब्धता से हम किस प्रकार खाद्यान्न उत्पादन का विस्तार कर सकते है"। इसका उत्तर यह है कि 20 वीं सदी की हरित क्रांति को पूरक करने के लिए मानवता को 21वीं सदी में नीली क्रांति लानी होगी अर्थात 'हर बूंद से अधिक फसल'।

जल बचत की कई तकनीकें हैं, परन्तु उनके उपयोग में अनेकों कठिनाईयों का सामना करना पड़ता है उदाहरण के लिए विभिन्न मिट्टी और भौगोलिक परिस्थितियों के संबंध में सुधार के लिए सीमित क्षमता का दोहन किया गया है। दूसरे जल बचत के उपायों की तुलना में एक उच्च उपज के साथ नई फसल किस्मों के प्रजनन और जल उपयोग दक्षता तथा सूखा प्रतिरोधन के निम्नलिखित गुण हैं। कम निवेश पर उत्पादन के द्वारा प्रौद्योगिकी हस्तांतरण के कम लागत के माध्यम से अधिक से अधिक ग्रहण, सतत् दक्षता तथा अधिक संभावित दोहन। जल के जैविक बचत, फसल के क्रियात्मक और आनुवंशिक सुधार के बुनियादी पहलुओं पर शोध से फसल 'जल उपयोग दक्षता' का भविष्य में अच्छा संकेत है। कई अवस्थाओं में उपज और सूखा प्रतिरोधन 'जल बचत दक्षता' से अनुपातिक है जो मिट्टी की जल स्थिति और प्राकृतिक वर्षा से भी संबंधित है।

^t y cpr n{kr* thu LFkku vkj v.k lpd

अलग–अलग परिस्थितियों में बड़ी संख्या में विभिन्न प्रजनन किस्मों में 'जल बचत दक्षता' को मापना कठिन है। इसलिए फसलों की 'जल बचत दक्षता' और उपयोग में लाए गए पानी की मात्रा को मापने के लिए पारम्परिक विधि का विकल्प खोजना आवश्यक है। 1984 में यह सुझाव दिया गया कि सी3 पौधों में प्रकाश संश्लेषण के दौरान स्थिर कार्बन आईसोटोप संरचना (δ13सी) और कार्बन आईसोटोप में विभेदन को मापा जाए। कई फसल किस्मों की पत्तियों में δ13सी का 'जल उपयोग दक्षता' के साथ नाकारत्क सहसंबंध है। कम δ13सी का मतलब होता है पत्ते की 'जल उपयोग दक्षता' में वृद्धि। इसलिए δ13सी या Δ, 'जल उपयोग दक्षता' के प्रतिनिधि के रूप में कार्य कर सकता है। गेहूँ एवं जौ की 4 एच (4डी) 'डॉइसोमिक' प्रतिस्थापित किस्मों में, जो जीन जौ के 4एच गुणसूत्र पर स्थापित हैं वे जल उपयोग की दक्षता बढ़ाने में समर्थ हैं, जो गेहूँ की सूखा प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि के लिए उपयुक्त है। संकरण द्वारा चीनी बंसत गेहूँ में डाईसोमि इमपीरियल राई गुणसूत्र के स्थानान्तरण के अध्ययन से पता चला कि गुणसूत्र 2 आर से 'जल उपयोग दक्षता' में वृद्धि और जड़ गुणों में सुधार हुआ। ऑपेटा 85 और डब्ल्यू 7984 से प्राप्त 114 गेहूँ आर.आई.एल.एस. का उपयोग विकास कक्ष में 'जल उपयोग दक्षता' के क्यू.टी.एल. के अध्ययन में किया गया। दो क्यू.टी.एल. 'जल उपयोग दक्षता' को नियंत्रित करने वाले (पी/टी) पाए गए। गुणसूत्र 1ए और एक 6डी पर जो 11.8 प्रतिशत और 14.84 प्रतिशत 'जल उपयोग दक्षता' की विभिन्नता की व्याख्या करता है। दस क्यू.टी.एल. का महत्वपूर्ण प्रभाव हर एक पौधे पर पाया गया और उनमें से दो क्यू.टी.एल. ए जीनोम पर स्थित (4ए, 7ए), चार बी जीनोम पर (3बी, 5बी) ओर चार डी जीनाम (3डी, 6डी) पर हैं। विभिन्न प्रकार के 'जल उपयोग दक्षता' को नियंत्रित करने वाले (क्यू.टी.एल.) ए जीनोम पर पाए गए। कुछ क्यू.टी.एल. जैसे सी.डब्ल्यू.एम. 461.1 और पी 8422–170 का उपयोग गेहूँ में माक्रर की सहायता से चुनाव में होता है। रूबिस्को एक्टिवेज और पौध 'जल उपयोग दक्षता' की सहलग्नता से प्रकाश संश्लेषण की जैव रसायनता का 'जल उपयोग दक्षता' को नियंत्रित करने में भूमिका होने का अतिरिक्त ज्ञान मिलता है। दो जीन (फरेक्टा और एलैक्स–8) जो जल उपयोग दक्षता को नियंत्रित करते हैं, एरैबिडोप्सिस थैलिआना में क्लोन किए गए हैं। 11 'जल उपयोग दक्षता' जीन माइक्रोएरे विश्लेषण के द्वारा पाए गए है। 6 जीन फसलों में स्थानांतरित किए गए हैं जिनके परिणामस्वरूप 'जल उपयोग दक्षता' और सूखा प्रतिरोधन में वृद्धि हुई है।

अधिक सूखा–प्रतिरोधक जीन संसाधनों की कार्यात्मक पहचान के लिए 'जल उपयोग दक्षता' महत्वपूर्ण है। इसलिए सूखा, प्रतिरोध और उच्च उपज के साथ नई किस्मों की आवश्यकता होगी जो सिंचाई की आवश्यकताओं को कम करेगी। इस बीच अर्द्ध शुष्क क्षेत्रों के लिए सस्य जनित तरीके अपनाए गए हैं जो फसल की जुताई के लिए जल सरंक्षण तकनीक पर आधारित हैं। नई सूखा–रोधी किस्में मध्यम तथा उच्च मध्यम उपज वाली शुष्क भूमि पर कृषि के लिए अनिवार्य है। उच्च पैदावार, उच्च जल उपयोग दक्षता और सूखा प्रतिरोधी गुणों को एक प्रजाति में संघटित करना एक उच्च

प्रजनन कार्यक्रम का लक्ष्य होना चाहिए और ऐसा जल बचत फसल प्रजनन दोनो सीमित भूमि और शुष्क भूमि पर कृषि के लिए जरूरी होगा।

सिंचित भूमि की उच्च पैदावार और उच्च जल उपयोग दक्षता वाली प्रजातियां और शुष्क भूमि की सूखा प्रतिरोधी लेकिन कम उपज वाली किस्मों का संकरण बहुत किया जाता है ताकि उच्च पैदावार जीन और उच्च जल उपयोग दक्षता और सूखा प्रतिरोधक जीन एक ही प्रजाति में लाए जा सके। जल बचत गेहूँ प्रजनन कार्यक्रम में पीढ़ियों का सिंचित और शुष्क परिस्थितियों के तहत चयन किया गया है जिससे उच्च उपज और उच्च जल उपयोग दक्षता एक अनुकूल वातावरण में और स्थिर उपज के साथ सूखा प्रतिरोधन एक प्रतिकूल वातावरण में निर्मित किया जाए। यह भविष्यवाणी की गई है कि जैविक पानी की बचत में तेजी से प्रगति हो जाएगी और वैश्विक ध्यान और निवेश के साथ पारंपरिक प्रजनन और नई जैव–तकनीकों के द्वारा अनुकूल और प्रतिकूल जल सीमित वातावरण में फसल जल उपयोग दक्षता में काफी हद तक सुधार किया जा सकता है। पारम्परिक प्रजनन भी इसमें महत्वपूर्ण भूमिका रखता है। आधुनिक जैवप्रौद्योगिक तकनीक से प्रजनन चक्र छोटा होगा। निस्संदेह विश्व कृषि के खाद्य उपलब्धता और गुणवत्ता में वृद्धि इक्कीसवीं सदी के वैज्ञानिकों के लिए जैव प्रौद्योगिकी बुनियादी कार्य सबसे बड़ी चुनौती है।

संसाधन संरक्षण में जैवप्रौद्योगिकी की भूमिका

jktUn flg] fxjh'k pUn ik.M;] ekeFkk ,p ,e ,o jru frokjh
xg vuqlèkku funs'kky;] djuky] gfj;k.kk

वर्तमान में विश्व जनसंख्या सात अरब के करीब है और एक अनुमान के आधार पर यह सन् 2050 ई. तक नौ अरब हो जाएगी। इतनी विशाल जनसंख्या के भरण–पोषण के लिए अधिक से अधिक अन्न की आवश्यकता पड़ेगी। प्रसिद्ध पौध प्रजनक एवं ''नोबल शांति पुरस्कार'' विजेता नॉर्मन ई. बोरलॉग जो 1960 एवं 1970 ई. के दशक में हुए हरित क्रांति के अग्रदूत थे, जिन्होंने भविष्य के बारे में यह विचार प्रकट किया कि अगले 50 वर्षों में विश्व के कृषकों एवं चारा उत्पादकों को अधिक से अधिक अन्न उत्पादन करना पड़ेगा जो कि उन्होने पूर्व के दस हजार वर्षों में किया और यह पर्यावरणीय रुप से दीर्घकालिक भी होना चाहिए। परंतु कृषि योग्य भूमि के विस्तार के लिए घटते प्राकृतिक संसाधन जो कि पारिस्थीकीय ह्रास के लिए उत्तरदायी है। अपनी मृदा, वायु एवं जल की सुरक्षा अत्यधिक आवश्यक है क्योंकि यह दीर्घ काल के लिए हमारे लिए जीवनदायी है।

वातावरण (पर्यावरण) एक महत्वपूर्ण घटक है जिसकी सुरक्षा में जैव प्रौधौगिकी अहम् भूमिका अदा कर सकता है। वैज्ञानिक, जैवप्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा अन्न उत्पादन के विधियों में सुधार करके उसे पर्यावरणीय रुप से सुरक्षित बना रहे है। इससे कृषकों को स्वस्थ्य एंव उच्च उत्पादक फसलों को बनाए रखने के लिए न्यूनतम रसायन, यथा कीटनाशी एवं खरपतवारनाशी का प्रयोग करना पड़ता है। रसायनों की कम प्रयोग जल एवं वन्य जीवों के लिए लाभकारी होता है। जैवप्रौद्योगिक फसल, उच्च उत्पादन, सरल कीट नियंत्रण एवं सरंक्षित जुताई के प्रेरक है जो कि कृषि दीर्घकालिकता में महत्वपूर्ण योगदान देते है। इसका लाभ मृदा, वायु एवं जल संसाधनों के सुधार में होता है।

हजारों वर्षों से किसान खरपतवार के नियंत्रण के लिए फसलों की जुताई मेंड़ विधि से करते आ रहे है जिससे फसलों को पोषण, जल एवं प्रकाश की उपलब्धता निंरतर बनी रहे। बीसवीं शताब्दी के मध्य दशकों में खरपतवारनाशी के विकास से कृषकों को खरपतवार के नियंत्रण के लिए रासायनिक माध्यम मिला जिसका बुआई से पूर्व एवं पश्चात फसलों के आगमन के अवस्था में प्रयोग सामान्य है। जैवप्रौद्योगिकी के प्रयोग द्वारा खरपतवार रोधी फसलों का विकास एवं क्रांतिकारी कदम है। जैवप्रौद्योगिक फसल का एक उदाहरण भारत में बीटी कपास की रोपाई वर्तमान (2012 ई.) खरीफ मौसम में 10.6 मिलीयन हैक्टर क्षेत्र में हुई थी जो विगत खरीफ मौसम (2011 ई.) में 12.1 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में बोया गया था। 2002–2003 ई. के वर्षों में भारत में सर्वप्रथम बीटी कपास के प्रयोग से कीटनाशियों के प्रयोग में भारी गिरावट आयी है। बीटी कपास आने से भारतवर्ष कच्चे कपास के आयातक की जगह निर्यातक राष्ट्र के रुप में परिवर्तित हो गया है। हमारे देश में 2001–02 वर्ष में कपास क प्रति हैक्टर उत्पादन 308 कि.ग्रा. था जो बीटी कपास के आने से 2011–12 में 499

कि.ग्रा. प्रति हैक्टर हो गया। कपास का उत्पादन 13.6 मिलीयन बेल (2002–03 ई.) से बढ़कर 35.5 मिलीयन बेल (2011–12 ई.) बीटी कपास के फलस्वरुप हुआ।

अन्य खरपतवारनाशी के विकल्प में ग्लाईफॉसेट का आगमन पर्यावरणीय रुप से लाभकारी तथा स्तनधारी, मत्स्य एवं पक्षियों के लिए भी कम विषाक्त होती और ये वातावरण में कम अवधि के लिए मौजूद रहते हैं। विगत वर्षों से ग्लाईफॉसेट एक सामान्य यौगिक बन गया है जिसका प्रयोग व्यापक रुप से बढ़ने के कारण उत्पादन खर्च में भी कमी आयी है। ग्लाईफॉसेट के सफल होने में महत्वपूर्ण परिपेक्ष्य यह रहा कि 1996 ई. में ग्लाईफॉसेट प्रतिरोधी फसल एवं ट्रांसजेनिक का आगमन हुआ। विश्व की 90 प्रतिशत ट्रांसजेनिक फसल ग्लाईफॉसेट प्रतिरोधी होते हैं तथा इन फसलों को व्यापक तौर पर अपनाया भी जा रहा है। ग्लाईफॉसेट रोधी फसल खरपतवारों के प्रबंधन तथा पर्यावरणीय रुप से भी इस तकनीक का अन्य तकनीकों के अपेक्षा लाभकारी प्रभाव है।

संरक्षण कृषि का मृदा की भौतिक व रासायनिक कारकों पर प्रभाव

vfurk eh.kk] j[kk efyd ,o l|eu yrk

xg| vu|lèkku fun'kky;] djuky] gfj;k.kk

वर्तमान में टिकाऊ संरक्षण खेती प्रणाली का मुख्य उद्‌देश्य खाद्‌य सुरक्षा, वैश्विक पर्यावरण संरक्षण के साथ किसान की जीवन शैली को सुधारना है तथा ग्रामीणवासियों के साथ तीन अरब शहरी उपभोक्तओं की आजीविका के लिए खाद्‌य उत्पादन तंत्र पर अध्ययन करना होगा। किसानों द्वारा वर्तमान कृषि प्रबंधन प्रणाली में निरंतर असंतुलित मात्रा में सीमित जल संसाधन के उपयोग से भविष्य में शुद्ध जल की उपलब्धता के लिए प्रतिस्पर्धा बढ़ गई है। अनुपजाऊ फसल प्रणाली एवं निम्न स्तर पर मृदा प्रबंधन प्रणाली के कारण उन्नत किस्मों की उपलब्धता के बावजूद अनुमानित उपज क्षमता में वृद्धि नहीं हो पा रही है। परम्परागत खेती प्रथाओं के आधार पर व्यापक जुताई के लगातार इस्तेमाल से मृदा कटाव को बढ़ावा मिला है और विशेष रुप से गहन जुताई में फसल अवशेषों को जलाने से मिट्‌टी की गुणवत्ता विकृत हुई है। मृदा क्षरण से फसल उपज में कमी के साथ पोषक तत्वों की भी कमी हुई है।

विकसित एवं विकासशील देशों में सरंक्षण खेती का उपयोग छोटे एवं बड़े किसानों के लिए अति आवश्यक है। इस प्रकार छोटे एवं बड़े किसानों के लिए प्रभावी लागत और स्थिर फसल उत्पादन प्रबल होगा। फलस्वरुप दुर्लभ संसाधनों का कुशल उपयोग सुनिश्चित करने के साथ फसल प्रबंधन तकनीकों का महत्व बढ़ेगा।

e'nk d! Hkkfrd dkjdk ij iHkko	e'nk d! jklk;fud dkjdk ij iHkko
विशेष रुप से शुष्क क्षेत्रों में मृदा पर फसल अवशेषों के रख–रखाव से मृदा में नमी में सुधार होता है और इससे मृदा के कई भौतिक कारकों में सकारात्मक परिवर्तन होता है जो इस प्रकार है ◆ पपड़ी के गठन की रोकथाम के माध्यम से भूमि में पानी के समावेश में वृद्धि ◆ मृदा संरचना में सुधार ◆ मृदा आच्छादन से जल के वाष्पीकरण में कमी ◆ मृदा एकत्रीकरण एवं मृदा स्थिरता में सुधार ◆ मृदा में संघनता एवं सरंध्रता में वृद्धि ◆ मृदा के तापमान में सुधार	फसल अवशेषों और फसल आच्छादन से मृदा के रासायनिक कारकों जैसे; पोषक तत्व, कार्बनिक पदार्थ आदि के आदान–प्रदान में वृद्धि होती है। फसल अवशेषों को जुताई कर मृदा में मिला देने से कई लाभकारी परिवर्तन होते हैं जो निम्न प्रकार है; ◆ कार्बनिक पदार्थ में वृद्धि ◆ पीएच और बफर क्षमता में वृद्धि ◆ मृदा में नाइट्रोजन, फास्फोरस और पोटाश में वृद्धि ◆ मृदा में कटायन विनिमय क्षमता में वृद्धि

गैर पारंपरिक ऊर्जा स्रोतों द्वारा ऊर्जा संरक्षण

d: pk;y] ,l vkj oek ,o ch ,y <kdk

Ñf"k foKku dUnz] cUnh] jktLFkku

हमारा जीवन सुचारू रूप से चले इसके लिए ऊर्जा एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है, मनुष्य की विभिन्न आवश्यकताओं की पूर्ति ऊर्जा के विभिन्न स्रोत ही करते हैं। ये स्रोत पारम्परिक व अपारम्परिक दोनों हो सकते हैं, मनुष्य के छोटे बड़े काम जैसे खाना बनाना, सिंचाई करना, पीने के पानी की आपूर्ति, घरों में प्रकाश, रोजगार के अवसर बढ़ाना आदि के लिए ऊर्जा की महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

निरन्तर जनसंख्या बढने से ऊर्जा का उपयोग भी बढ़ता जा रहा है, जिससे पारम्परिक साधन लगातार कमी की ओर अग्रसर हो रहें हैं। ऊर्जा के बढ़ते जा रहे उपयोग से प्रर्यावरण को भी चिंता का एक विषय बना दिया है। एक ओर तो जनसंख्या वृद्धि ने पर्यावरण के संतुलन को बिगाड़ा है, दूसरी ओर विभिन्न ऊर्जा संसाधनों जैसे तेल, कोयला, गैस आदि के दोहन से उत्पन्न गैसों ने प्रर्यावरण को प्रदूषित किया है।

कोयला, तेल और प्राकृतिक गैस अब तक ऊर्जा प्राप्ति के परम्परागत साधन रहे हैं, ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि अगली शताब्दी तक इनका भण्डार समाप्त हो जायेगा, इसलिए ऊर्जा स्रोतों के अधिक दोहन की बजाय उनका न्यायसंगत और किफायती उपयोग किया जाना चाहिए। अनवीकरणीय स्रोत लगातार खत्म होते जा रहे हैं, अतः ऊर्जा के अपरम्परागत स्रोत जैसे–सौर ऊर्जा, बायो गैस, पवन ऊर्जा, बायोमास एवं उन्नत चूल्हा आदि को बढ़ावा देने की जरूरत है।

भारत में ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों का इसलिए अधिक महत्व है कि सुदूर व बिखरे गांवों के देश में हर झोंपड़ी तक पारम्परिक ऊर्जा पहुंचाना एक खर्चीला व चुनौती भरा काम है। इसलिए हमें हमारे देश के लिए ऐसे ऊर्जा स्त्रोतों की जरूरत हैं, जिसमें खर्च कम हो, प्रर्यावरण प्रदूषण ना हो और जिनका कोष अक्षय हो। जिससे अपारम्परिक ऊर्जा स्त्रोतों के प्रयोग में आने वाले संकट से निजात पायी जा सकती है। अपारम्परिक ऊर्जा स्रोत हमारे दैनिक जीवन व कृषि क्षेत्र में काफी उपयोगी सिद्ध हुए हैं।

lkj Åtk

अपारम्परिक ऊर्जा स्रोतों में सौर ऊर्जा विशेष महत्व है। वर्तमान में सौर ऊर्जा से विद्युत उत्पादन, सौर तापीय उपकरण, सौर शीत उपकरण, सौर प्रकाश उपकरण आदि संचालित किये जा रहे हैं। सौर ऊर्जा को सीधे विद्युत में परिवर्तन करने हेतु सोलर सेल का उपयोग किया जाता है, जो एक श्रृंखलाबद्ध पैनल के रूप में होते हैं। इस पैनल पर सौर प्रकाश को सीधी दिशा में परावर्तित करते हैं जिससे तापीय ऊर्जा विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित हो जाती है। इसे विद्युत ऊर्जा में परिवर्तित कर

बैटरी में एकत्रित कर दिया जाता है इसे फोटोवोल्टिक प्रभाव कहा जाता है। सूर्य से निकलने वाली प्रकाशमयी तरंगें, विकिरण के रूप में अवतरित होती हैं जो ठोस और द्रव्य के सम्पर्क में आकार अवशोषित हो जाती है। इसे तापीय ऊर्जा कहते है, इस ऊर्जा को सीधे खाना पकाने, पानी गर्म करने, अनाज तथा फल सब्जियां सुखाने, खारे पानी को पीने योग्य बनाने में इत्यादि काम में लिया जा सकता है।

भारत में सौर ऊर्जा की अपार संभावनाएं नजर आती हैं। भारतीय भू–भाग पर औसतन 300 दिन सूर्य रहता हैं जो अपने प्रकाश द्वारा 5 किलोवाट प्रति वर्ग मीटर प्रतिदिन ऊर्जा प्राप्त करता है। यदि इस भू भाग पर पड़ रही सौर ऊर्जा का एक प्रतिशत भी परिवर्तित किया जाए तो 492x109 किलोवाट घंटा/वर्ष विद्युत ऊर्जा पैदा हो सकती है।

भारत की भौगोलिक संरचना में लगभग 18000 गांव हैं इन गांवों में पावर ग्रिड की बिजली पहुंचाना खर्चीला काम है। इन क्षेत्रों में सौर ऊर्जा द्वारा बिजली पहुंचाकर जीवन को सुगम बनाया जा सकता है। सौर ऊर्जा का सबसे महत्वपूर्ण लाभ यह है कि यह प्रदूषण से मुक्त है। सौर ऊर्जा पर आधारित निम्न संयंत्र हमारे देश में काफी उपयोगी साबित हुए हैं तथा इनके उपयोग से घरेलू व कृषि क्षेत्र में ऊर्जा का संरक्षण किया जा सकता है।

1. **सोलर कुकर :** सोलर कुकर सौर ऊर्जा पर आधारित एक मुख्य उपकरण हैं जिसमें सूर्य की गर्मी से भोजन पकता है। यह मुख्यता दो प्रकार का होता है। (1) डिशनुमा (2) संदूकनुमा। संदूकनुमा सौर कुकर व्यापक प्रचलित है, जिसमें 100 से 110 डिग्री सेन्टीग्रेड तक तापमान उत्पन्न होता है। प्रायः यह उपकरण 5 से 50 सदस्यों हेतु भोजन पकाने के लिए ऊर्जा की आवश्यकता को आसानी से पूरी कर देता है।
2. **सोलर लालटेन :** हमारे विकासशील देश में आज भी ग्रामीण क्षेत्रों में रात के समय किसी भी प्रकार की रोषनी करने की सुचारू व्यवस्था नहीं है। सोलर लालटेन को ऐसे स्थानों पर प्रयोग में लेकर अंधेरे की समस्या को हल किया जा सकता है। इसमे एक सोलर मॉड्यूल द्वारा दिन में लालटेन में लगी बैटरी सूर्य की ऊर्जा से चार्ज हो जाती है, जिससे रात्रि के समय लगातार लगभग छः घंटे तक प्रकाश किया जा सकता है।
3. **सोलर वाटर हीटर :** इससे ऊर्जा की बचत तो होती है साथ ही प्रदूषण से भी मुक्ति मिलती है। इससे प्रतिदिन 100 से 200,000 लीटर तक गर्म पानी उपलब्ध हो जाता है। 100 लीटर प्रति दिवस क्षमता की इस प्रणाली से एक वर्ष में लगभग 1500 यूनिट बिजली की बचत होती है। यानि लगभग 8000/– रुपये की बचत प्रति वर्ष की जा सकती है।
4. **सोलर स्ट्रीट लाइट :** ऊर्जा संरक्षण के उपाय हेतु आजकल सोलर लाईटें भी प्रचलन में हैं। आवास स्थलों व मार्गों पर प्रकाश के लिए सोलर स्ट्रीट लाइट को उपयोग में लाया जा सकता है।

5. **सौर आसवक संयंत्र :** पीने का पानी जो अशुद्ध होता है यानि जिनमें हानिकारक कीटाणु, क्षार या लवण होते हैं, पीने के अयोग्य माना जाता है। ऐसे पानी को सौर ऊर्जा द्वारा आसवित करके इसे पीने योग्य बनाया जाता है। इसका निर्माण घर के पास खाली जगह या छत पर ऐसी जगह किया जाता है जहां पर अधिक समय तक धूप रहती है। संयंत्र निर्माण के पश्चात् संयंत्र की समुचित सीलिंग द्वारा टफण्ड ग्लास से ढका होता है। आसवक संयंत्र में एकत्रित साधारण जल पर कांच के माध्यम से जब सूर्य की सीधी किरणे संयंत्र पर पड़ती है तो जल वाष्प बनकर ऊपर लगे ग्लास से टकराती हैं। इस प्रक्रिया में वाष्पनुमा जल संघनित होकर आसवित जल में परिवर्तित हो जाता है। इस जल को निकास द्वार के माध्यम से किसी बर्तन में संग्रहित किया जाता है।

6. **सौर ऊर्जा चलित मोमबत्ती मशीन :** मोमबत्ती बनाने के लिए अभी तक परम्परागत ईंधन जैसे मिट्टी का तेल, कोयला, लकड़ी, बिजली, गैस इत्यादि का उपयोग किया जाता है। केन्द्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान, जोधपुर द्वारा एक सस्ती मशीन का निर्माण किया गया है जिससे सौर ऊर्जा का ईंधन के रूप मे प्रयोग करते हुए मोमबत्ती का किफायत के साथ वाणिज्यिक उत्पादन किया जा सकता है। इस सौर मशीन में लोहे की चद्दर का बना चौकोर आकार का पतला बक्सा होता है। बक्से की उपरी सतह पर साधारण काला रंग कर दिया जाता है जो सूर्य की अधिकतम किरणों को सोखने का कार्य करता है। यह सौर मशीन सूर्य से सीधे, पतले बक्से के समतल लोहे की प्लेट पर सूर्य की किरणें प्राप्त करती हैं। इस प्लेट पर सौर किरणें अवशोषित होकर ताप में बदल जाती है। यही एकत्रित ताप मोम को पिघाल कर मोमबत्ती के उत्पादन का कार्य सम्पन्न करता है ।

7. **सौर पम्प :** सौर उर्जित जल पम्प (सोलर फोटोवोल्टाईक पम्प) में विशेष रूप से चुने हुए सौर प्रकाश फोटोवोल्टाईक मॉड्यूल द्वारा प्रचुर मात्रा में उपलब्ध सूर्य के प्रकाश को सीधे ही डी. सी. विद्युत में परिवर्तित किया जाता है। इस विद्युत शक्ति से एक विशेष रूप से निर्मित उच्च दक्षता वाले डी. सी. मोटर पम्प संयुग्म को चलाया जाता है। सौर उर्जित जल पम्प विद्युत रहित गांवों में लघु सिंचाई एवं पेयजल आपूर्ति, पशुपालन, मुर्गी पालन, ऊंचे मूल्य वाली फसलों का उत्पादन आदि के लिए अति उपयुक्त है।

   पी. वी. पम्प में स्थापित फोटोवोल्टीय सेल मॉड्यूल सौर ऊर्जा को विद्युत में बदलता है जिसका उपयोग मोटर पम्पसेट को चलाने में होता है। एक फोटोवाल्टीय पम्प प्रणाली के द्वारा अच्छी धूप वाले दिन 7 मीटर गहरे कुएं से अथवा 10 मीटर के कुल गहराई से 560 वाट की क्षमता वाले पम्प से 45000 लीटर प्रतिदिन और 900 वाट की क्षमता से 65000 लीटर प्रतिदिन पानी मिल सकता है। पम्प से निकलने वाले पानी की मात्रा सबेरे से शाम तक सूर्य की किरणों की तीव्रता के अनुसार बदलती रहती है। जल– तल जमीन के प्रकार और जल प्रबंध के अनुसार

सौर फोटोवोल्टीय प्रणाली द्वारा 10 मीटर के कुल शीर्ष से 2–4 हैक्टर जमीन की सिंचाई हो सकती है।

8. **सौर शुष्कक :** हमारे देश में प्रति वर्ष पैदा होने वाले फलों के कुल उत्पादन में से केवल 0.5 प्रतिशत उत्पादन ही उद्योगों द्वारा संशोधित एवं संरक्षित किया जाता है। कुल उत्पादन का लगभग 25–30 प्रतिशत बाजार तक पहुंचने से पहले खराब हो जाता है तथा फसल को भी अधिक समय तक रखने के लिए फसल की नमी को कम करना आवश्यक है। सौर ऊर्जा आधारित सौर शुष्कक द्वारा फसल को सुखाया जा सकता है। जिसमें फसल की अनावश्यक नमी को कम करके अधिक समय तक भंडारण किया जा सकता है। परम्परागत विधि में फल सब्जियों को खुले आंगन में धूप मे सुखया जाता है। इस पद्धति से एक तो समय अधिक लगता है, साथ ही धूल, मिट्टी, पक्षियों से खराब होने का डर रहता है। फल एवं सब्जियों को सुखाने के लिए 50–60 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान अनुकूल है। कुछ फल एवं सब्जियों के लिए 80 डिग्री सेन्टीग्रेड है। उपयुक्त स्तर के तापमान की प्राप्ति सौर शुष्क प्रयोग द्वारा आसानी से कर सकते हैं।

(क) **विकीरण शुष्कक :** इस प्रकार के शुष्क में सौर ऊर्जा बॉक्स के ऊपर लगे कांच द्वारा सीधे अंदर प्रवेश करती है। इससे अन्दर की हवा गर्म हो जाती है। इसके साथ ही बॉक्स के नीचे बने छिद्रों से ताजी हवा प्रवेश करती है। इस प्रकार के शुष्कक में गर्म हवा से सुखाने वाले पदार्थ की नम हवा ऊपर से बने छिद्रों से बाहर चली जाती है। नमी का वाष्पीकरण हो जाता है। कम मात्रा मे फल और सब्जियां सुखाने के लिए इस प्रकार के शुष्कक उपयुक्त हैं। इस प्रकार के शुष्क मे मुख्यतः लहसुन, अदरक, पालक, टमाटर तथा अंगूर आदि को सुखाया जाता है।

(ख) **ऊर्जा संवाहक शुष्कक :** फसल सुखाने के लिए सर्वप्रथम हवा को गर्म किया जाता है। हवा को गर्म करने के लिए समतल प्लेट संग्रहक को काम में लेते हैं। फिर इस गर्म हवा को उस कक्ष मे भेजा जाता है जहां पर फसल को सुखने के लिए रखा गया है। साधारणतः इस प्रकार के संयंत्र अनाज सुखाने, चाय व कॉफी सुखाने के काम में आते हैं।

9. **पशु बांटा सोलर कुकर :** कृषि प्रधान भारत देश में प्राचीन काल से ही ग्रामीण क्षेत्रों में खेती के साथ–साथ पशु पालन एक मुख्य व्यवसाय रहा है। साधारणतयाः ग्रामीण क्षेत्रों में पशु का भोजन पारम्परिक चूल्हों में लकड़ी या कृषि अपशिष्टों को जलाकर तैयार किया जाता है। इसमें समय के साथ श्रम भी अधिक लगता है। पशु बांटा पकाने के लिए सौर ऊर्जा आधारित उन्नत किस्म के सोलर कुकर का निर्माण किया गया है। सामान्यतः इस प्रकार के सोलर कुकर का निर्माण घर की छत पर या घर के पास खाली व खुले स्थान पर किया जाता है। यह कुकर दक्षिण दिशा की ओर दिन के समय सर्वाधिक सूर्य की रोशनी उपलब्ध रहने से दक्षिण दिशा की ओर बनाया जाता है। ईंट, सीमेन्ट व कंकरीट द्वारा पशु बांटा सोलर कुकर को बनाया जाता है। सोलर कुकर का कुल माप 915 मिमी × 915 मिमी × 190 मिमी धरातल के ऊपर

तथा काले रंग का गरम बॉक्स जिसमें पशु बांटा को पकाने के लिए बर्तनों को रखते हैं उसका माप 600 मिमी × 600 मिमी × 200 मिमी होता है। निचले सिरे पर उपयुक्त कुचालक पदार्थ (ग्लासवूल) भरा रहता है, ताकि जब सूर्य की उर्जा काँच द्वारा अन्दर प्रवेश करे तो वह बाहर की ओर ना जा सके। यही सौर उर्जा पशु बांटा को पकाने के काम आती है। इस कुकर के उपयोग से पारम्परिक उर्जा स्रोत्रों जैसे लकड़ी, कोयला तथा केरोसीन आदि पर होने वाले खर्चों को बचाया जा सकता है।

mUur pYgk

ग्रामीण क्षेत्रों मे भोजन पकाने का कार्य परम्परागत रूप से बने हुए मिट्टी के चूल्हों पर ही किया जाता है। इन चूल्हों का निर्माण अत्यन्त दोषपूर्ण है, इनमें अधिक ईंधन खर्च होता है, धुंआ भी अधिक होता है। जिससे रसोईघर व आस–पास का वातावरण प्रदूषित हो जाता है तथा इन चूल्हों पर कार्य करने वाली महिलाओं की आँखों तथा फेंकड़ों की बीमारियां होने का खतरा बना रहता है तथा इन चूल्हों की दक्षता भी लगभग 8–10 प्रतिशत ही होती है। ईंधन, समय व श्रम की बचत, पर्यावरण की रक्षा के साथ–साथ ग्रामीण महिलाओं के स्वास्थ्य में सुधार हो इसके लिए उन्नत चूल्हों का निर्माण किया गया है। इन चूल्हों की तापीय क्षमता 25 प्रतिशत तक होती है। इनमें सही दहन व ऊष्मा का सुचारू परिचालन होता है तथा उष्मा के विकिरण एवं संवहन से होने वाली हानि भी कम होती है।

rduhd ,oa dk;Z

उन्नत चूल्हों का निर्माण इस तरह से किया जाता है कि ईंधन को जलने के लिए जितनी हवा (ऑक्सीजन) की जरूरत हो उतनी ही उसे मिले। यदि हवा की मात्रा ज्यादा होगी तो ईंधन ज्यादा जल्दी जल जाएगा और उष्मा व्यर्थ ही चली जायेगी, इसके विपरीत ईंधन को हवा कम मिलेगी तो ईंधन अच्छी तरह नहीं जलेगा और धुंआ भी अधिक होगा।

1. **चेतक एक बर्तन वाला निर्धूम चूल्हा :** यह चूल्हा अधिक टिकाऊ है। इसकी तापीय दक्षता 21 प्रतिशत है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसके मुख्य छेद पर रखे बर्तन को अधिक उष्मा मिलती है जिससे भोजन को पकाने मे कम समय लगता है तथा परम्परागत चूल्हों की तुलना में ये चूल्हे अधिक समय तक काम में लाए जा सकते हैं।
2. **उदयराज दो बर्तन वाला निर्धूम चूल्हा :** उदयराज चूल्हे की तापीय दक्षता 26 प्रतिशत है। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि इसके दोनों छेदों पर रखे बर्तनों को उष्मा मिलती है जिससे एक साथ दोनों छेदों पर भोजन पकाया जा सकता है। यह पक्का चूल्हा, गांव मे ही उपलब्ध ईटों व सीमेन्ट को प्रयोग कर किसी भी प्रशिक्षण प्राप्त व्यक्ति द्वारा आसानी से बनाया जा सकता है। यह चूल्हा लगभग पांच वर्ष तक कार्य कर सकता है।

fo'k"krk ,oa ykHk

1. धुएँ को बाहर निकालने के लिये चिमनी लगी होती है जिससे धुआं घर में नहीं होता जिससे बिमारियों का खतरा नहीं रहता।
2. इस चूल्हे की तापीय दक्षता अधिक होती है, अतः इस चूल्हे में ईंधन और समय की बचत होती है।
3. दो बर्तन वाले चूल्हें में एक ही समय में दो चीजें एक साथ पकाई जा सकती है। जिससे समय व श्रम दोनों की बचत होती है।

ck;kxSl

प्राचीन समय से हमारे देश में मुख्य रूप से ग्रामीण क्षेत्र में ईधन के रूप में गोबर का प्रयोग किया जाता है। सामान्यतः गोबर का उपयोग उपले या कण्डे बनाकर ईंधन के रूप में या खाद बनाकर फसल उत्पादन में किया जाता है लेकिन दोनो रूपों में इसका समुचित उपयोग नहीं हो पाता।

वर्तमान वैज्ञानिक युग मे बायोगैस संयंत्रों का निर्माण किया गया है जिसमें गोबर का समुचित प्रयोग किया जा सकता है। इस संयंत्र में गोबर व पानी को समान मात्रा में मिलाकर हवा की अनुपस्थिति में किण्डिवत किया जाता है तो ईंधन के रूप में एक गैस प्राप्त होती है जिसे बायोगैस कहते हैं यह गैस स्वच्छ कम लागत वाली एवं प्रदूषण रहित ज्वलनशील होती है। पेड़ पत्ती अपशिष्ट, जल कुम्भी, मनुष्य का मलमूत्र एवं केले का तना, रतनजोत, अरण्डी का तेल निश्कासित खली आदि से भी गोबर गैस का उत्पादन अधिक किया जा सकता है।

xkscj xSl dk lxBu

गोबर गैस में मुख्यत मिथेन 55–60 प्रतिशत कार्बन डाई ऑक्साइड 35–40 प्रतिशत, हाइड्रोजन 0.4 प्रतिशत नाइट्रोजन, 1.5 प्रतिशत और वाष्प अल्प मात्रा मे पायी जाती है। यह गैस बहुत ही लाभदायक है यह रसोई गैस द्रवीभूत पेट्रोलियम गैस (एल.पी.जी.) की तुलना मे अधिक प्रदूषण रहित और सस्ती है। इसकी तापीय क्षमता 4713 किलो कैलोरी/घन मीटर है।

(1) स्थिर गुम्बदनुमा बायोगैस संग्राहकः स्थिर गुम्बदनुमा संग्राहक एक सामान्य प्रचलित गोबर गैस संग्राहक है। इससे कम लागत में संयंत्र निर्माण एवं इसमे रख–रखाव का खर्चा भी कम होता है। इस प्रकार के संयंत्र की डिजाइन निम्नानुसार हैः–

(अ) जनता मॉडल : यह काफी प्रचलित और सस्ता गोबर गैस संयंत्र है। इसमें सिलेण्ड्रीकल डाइजेस्टर होता है जिसके ऊपर गुम्बदनुमा टैंक होते हैं। इसकी कीमत तैरतेनुमा गोबर संयंत्र की अपेक्षा 30–40 प्रतिशत कम होती है।

(ब) **दीनबंधु मॉडल :** इसमें मुख्य टैंक दो उर्ध्वाकार भागों में निर्मित होता है जिसमें एक डाइजेस्टर के लिए और दूसरा गोबर गैस (मिथेन गैस) इकट्ठा करने के लए उपयोग किया जाता है। मुख्य रूप से प्रचलित इस डिजाईन का खर्चा जनता मॉडल से 20 प्रतिशत तक कम होता है।

(2) **लचीला थैलीनुमा गैस संग्राहक :** लचीला थैलीनुमा डाइजेस्टर सामान्यतः भारत में उपयोग में नहीं लाये जाते हैं। यह जल्दी ही भारत में प्रचलित हो सकता है क्योंकि इसकी कुछ विलक्षण फायदे हैं, परन्तु संचालन की प्रक्रिया में कुछ परेशानियां भी हैं। यह डाइजेस्टर स्थापित करने में सस्ता है। इसके अलावा इसका उपयोग दीर्घकाल तक कर सकते हैं और यह स्थायी है। इस डाइजेस्टर की विशेषता यह है कि यह एक समान गैस का दबाव बनाता है।

(3) **तैरतेनुमा गैस होल्डर (के.वी.आई.सी.) गोबर गैस संयंत्र :** केवीआईसी बायोगैस संयंत्र एक गहरा कुंआनुमा गड्ढे के आकार का होता है जो इनलेट व आउटलेट पाइप से जुड़ा होता है। एक लोहे के ड्रम का गैस संग्रहण हेतु काम में लिया जाता है। यह गैस होल्डर, गोबर घोल में उल्टा रखा होता है जो कि गैस एकत्रित होने एवं काम में लेने के दौरान गैस दाब के कारण गाइड पाईप के सहारे उपर नीचे चलता है।

ck;kxSl la;a= dh LFkkiuk

बायोगैस संयंत्र एक सरल तकनीक पर आधारित संयंत्र है परन्तु इसे किसी प्रशिक्षित कारीगर द्वारा तकनीकी देख–रेख में ही बनवाया जाना चाहिए। संयंत्र निर्माण की निर्धारित प्रक्रिया का इसके विभिन्न स्तरों पर पूर्ण रूप से पालन किया जाना चाहिए। संयंत्र निर्माण में ली जाने वाली सामग्री उत्तम गुणवत्ता और समुचित मात्रा में होनी चाहिए, ताकि संयंत्र निर्माण में दोष न रहे। संयंत्र में उत्पादित बायोगैस पाइप द्वारा रसोईघर में पहुंचाई जाती है। संयंत्र का निर्माण कार्य पूरा होने पर समुचित तराई करनी चाहिए।

ck;kxSl la;a= dh {kerk dk pquko

संयंत्र की क्षमता का चुनाव प्रतिदिन पशुओं से उपलब्ध गोबर की मात्रा तथा गैस की संभावित खपत के आधार पर किया जाता है। संयंत्र मे गोबर 25 किलोग्राम प्रति घन मीटर क्षमता के हिसाब से प्रतिदिन डाला जाता है। अतः यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि उपलब्ध पशुओं की संख्या के आधार पर प्रतिदिन कितना गोबर उपलब्ध हो सकेगा। औसतन प्रति पशु प्रतिदिन गोबर की उपलब्धता 6–10 किलोग्राम तक होती है।

lkj.kh 1- fofHkUu {kerk d ck;kxl l;a=k d fy, ifrfnu xkcj dh vko';d ek=k

l;a= {kerk ¼?k-eh-½	xkcj dh vko';d ek=k ¼fd-xk-½	miyC/k tkuojk dh l[;k	ifjokj e lnL;k dh l[;k
1	25	2–4	3–4
2	50	5–8	5–8
3	75	8–12	9–12
4	100	10–16	13–16
5	150	15–25	17–24

ck;kxl d mi;kx

भोजन पकाने के लिए : बायोगैस का सबसे पहला एवं सर्वोत्तम उपयोग खाना बनाने के लिए होता है। बायोगैस चूल्हे में बायोगैस की ऊर्जा का सर्वाधिक रूपान्तरण तापीय ऊष्मा के रूप मे होता है। बायोगैस चूल्हे से 60 प्रतिशत ऊष्मा प्राप्त होती है। इसका मतलब यह है कि एक घनमीटर बायोगैस से चूल्हे पर गर्म होने वाले बर्तन एवं पदार्थ को 2800 किलो कैलोरी ऊष्मा प्राप्त होती है। घर में खाना बनाने के लिए प्रति व्यक्ति प्रतिदिन अधिकतम 0.3 घन मीटर गैस की आवश्यकता होती है। इस तरह से यदि परिवार में सदस्यों की संख्या पांच है तो कुल 1.5 घन मीटर गैस की आवश्यकता होती है। खाना बनाने के लिए घर में 0.45 घन मीटर प्रति घंटा गैस खपत करने वाले गैस चूल्हे का उपयोग करने पर एक घनमीटर गैस सामान्यतः 2 घंटा 15 मिनट चलती है। बायोगैस संयंत्र को शौचालय से जोड़कर अतिरिक्त गैस का उत्पादन किया जा सकता है। ऐसी स्थिति मे शौचालय का स्तर बायोगैस संयंत्र से ऊँचा होना चाहिए।

रोशनी के लिए : बायोगैस का दूसरा उत्तम उपयोग प्रकाश के लिए होता है। जिस क्षेत्र में अभी तक सुचारू रूप से बिजली नहीं पहुंची है वहां पर बायोगैस का प्रकाश के लिए उपयोग किया जा सकता है। प्राप्त प्रकाश, बिजली के प्रकाश के समकक्ष होता है एवं इसकी देख–रेख भी कम करनी पड़ती है। आजकल बाजार में घर के अंदर एवं बाहर दोनों के उपयोग के लिए अलग अलग बायोगैस लैम्प उपलब्ध है। बायोगैस लैम्प में प्रकाश की तीव्रता 100 कैंडल पावर या 40 वाट के बल्ब के बराबर होती है। बायोगैस लैम्प को एक घंटा जलाने के लिए 0.15 घन मीटर गैस की आवश्यकता होती है। इसका मतलब यह है कि एक घनमीटर बायोगैस से लगभग सात घंटे तक प्रकाश मिल सकता है।

डीजल इंजन चलाने हेतु : बायोगैस का उपयोग डीजल इंजन चलाने के लिए किया जा सकता है। इस प्रकार के इंजन विभिन्न कम्पनियों ने तैयार किये हैं। ये इंजन 80 प्रतिशत बायोगैस व 20 प्रतिशत डीजल पर चलते हैं। एक हॉर्सपावर के इंजन को एक घंटा चलाने के लिए 0.50 घनमीटर बायोगैस लगती है। एक घनमीटर बायोगैस से एक हॉर्सपावर इंजन को दो घंटे तक चलाया जा सकता है। इस प्रकार से बायोगैस का उपयोग करने के लिए बायोगैस की सिर्फ 25 प्रतिशत ऊर्जा

का रूपान्तरण यांत्रिक शक्ति में होता है। इसका मतलब यह है कि एक घन मीटर बायोगैस में से 1175 किलो कैलोरी ऊर्जा ही यांत्रिक शक्ति में रूपान्तरित हो पाती है। इस डीजल कम बायोगैस इंजन से सिंचाई के लिए पम्प सेट, थ्रेसर एवं चक्की इत्यादि उपकरण चलाये जा सकते हैं। इस प्रकार के डीजल इंजन 3 से 16 हॉर्स पावर तक बाजार मे उपलब्ध हैं।

आजकल बाजार मे शत–प्रतिशत बायोगैस पर संचालित ईंजन जेनरेटर सेट विभिन्न क्षमताओं के उपलब्ध हैं। जिसमें डीजल का प्रयोग बिल्कुल नहीं होता है।

बिजली उत्पादन के लिए : बायोगैस से जनरेटर चलाकर बिजली निर्मित की जाती है। बिजली निर्माण के लिए सर्वप्रथम बायोगैस की ऊर्जा को बायोगैस कम डीजल इंजन से अथवा शत–प्रतिशत बायोगैस आधारित इंजिन से यांत्रिक शक्ति में बदला जाता है। इसके बाद उससे जेनरेटर चलाकर बिजली उत्पन्न की जाती है। इस प्रकार पूरी प्रक्रिया से रूपान्तरण क्षमता लगभग 20 से 25 प्रतिशत होती है। एक घन मीटर बायोगैस से 1.25 किलोवाट बिजली निर्माण की जा सकती है। जेनरेटर चलाने के लिए छोटा बायोगैस संयंत्र उपयुक्त नहीं होता है। बिजली निर्माण के लिए बड़ा बायोगैस संयंत्र ही लगाना चाहिये। आजकल बाजार में इस प्रकार के 3.5 किलोवाट से 7.5 किलोवाट के जेनरेटर सेट उपलब्ध है।

बायोखाद (बायोगैस स्लरी) : बायोगैस संयंत्र में गोबर की खाद बनने में सिर्फ डेढ़ महीने का ही समय लगता है जो कि अन्य विधियों से खाद बनाये जाने की तुलना में काफी कम होता है। बायोगैस संयंत्र में डाली गयी स्लरी का लगभग 20–25 प्रतिशत भाग बायोगैस में परिवर्तित हो जाता है जिसका उपयोग ईंधन के रूप में किया जाता है तथा शेष 75–80 प्रतिशत भाग तरल किण्वत स्लरी बायोखाद के रूप में बायोगैस संयंत्र के निकास द्वार से स्वतः ही बाहर निकल जाती है। इसलिए समुचित उपयोग के लिए गोबर को बायोगैस संयंत्र में काम लेना चाहिए, क्योंकि इसमें बायोगैस के अलावा गोबर की खाद बनाने की तुलना में 20–35 प्रतिशत तक अधिक कार्बनिक खाद प्राप्त होती है ।

iou pDdh

पवन चक्की गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोत का एक ऐसा महत्वपूर्ण उपकरण है, जो विद्युत ऊर्जा के स्थान पर पवन ऊर्जा के माध्यम से संचालित होती है। पवन चक्की की कार्य प्रणाली बहुत ही साधारण होती है। हवा प्राप्त होने पर पवन चक्की का रोटर घूमना आरम्भ कर देता है। रोटर के घूमने से पर्याप्त ऊर्जा गीयर बॉक्स को प्राप्त होती है जिससे गीयर बॉक्स कनेक्टिंग रॉड से जुड़े पम्प को चलाता है एवं कुएं से पानी निकलने लगता है।

गहरे कुआँ से पानी निकालने हेतु पवन चक्की एक बहुत ही उपयोगी साधन है। निश्चित वायु के वेग पर ये स्वतः ही चालू हो जाती है और कुओं से पानी निकालना शुरू कर देती है।

इनके द्वारा निकाले गए पानी को एक बड़े टैंक में इकट्ठा कर लिया जाता है। जिसमें से नल द्वारा आवश्यकतानुसार आसानी से पानी प्राप्त कर उपयोग किया जा सकता है। पवन चक्की द्वारा 150–200 फीट गहराई तक से आसानी से पानी निकाला जा सकता है। उथले कुएं/बावड़ी से पानी निकालने हेतु भी इनका उपयोग किया जा सकता है।

iou pDdh d e[; Hkkx

टावर : इसमें एक लोहे का एंगल होता है, जिसके उपर अन्य पार्ट कसे जाते हैं। सामान्यतः इसकी ऊँचाई 30 फीट होती है।

रोटर : टावर के ऊपर लगा होता है। इस पर 18 ब्लेड कसे रहते हैं, जो वायु वेग से घूमकर पवन चक्की को ऊर्जा प्रदान करते हैं। इसका व्यास साधरणतः दस फीट होता है। यह टावर के ऊपर लगा होता है।

टेल : यह भाग रोटर के पीछे लगा होता है। इसका कार्य पवन चक्की को वायु की दिशा में मोड़ना एवं अत्यधिक वायु वेग पर पवन चक्की को बंद कर उसकी सुरक्षा करना होता है।

पम्प : कुएं से पानी निकास हेतु 2 से 4 इंच का पम्प प्रयुक्त होता है। 10 किलोमीटर प्रति घंटा या अधिक वायु गति पर पवन चक्की से पानी निकाला जा सकता है। इस पानी को एकत्रित करके सिंचाई अथवा पीने के उपयोग मे लिया जा सकता है।

गीयर बॉक्स : यह भाग टावर के ऊपर लगा रहता है एवं रोटर की मुख्य शॉफ्ट से जुड़ा रहता है। इसका कार्य पवन चक्की की घूर्णन गति को बढ़ाना एवं रोटर से प्राप्त घूर्णन गति को सीधी गति में परिवर्तित कर पम्प को चलाना होता है। इसके अन्दर गीयर ऑयल भरा रहता है।

पाईप : सवा इंच से दो इंच का पाईप पानी एकत्रीकरण हेतु काम में लिया जाता है।

iou pDdh ls lEcfU/kr lkoèkkfu;k¡

- गीयर बॉक्स में तेल की समय समय पर जांच करते रहना चाहिए। तेल कम होने पर उसमें पुनः तेल भरना चाहिए।
- यदि किसी कारणवश पवन चक्की के चलने पर भी पानी नहीं निकल रहा हो तो पम्प के वाशर की जांच करनी चाहिए और यदि वह खराब हो गया हो तो उसे बदलना चाहिए।
- पानी की जरूरत नहीं होने पर तथा कुएं का जल स्तर पम्प से नीचे चले जाने की स्थिति में पवन चक्की को बंद कर देना चाहिए।

संसाधन संरक्षण तकनीकों पर "चुर्णिल आसिता" (पाउडरी मिल्ड्यू) रोग की संभावना, प्रबंधन एवं उपज पर प्रभाव

i|d t d|ekj f l|g] f t r|Un| d|ekj] fofiu i|okj] vkj l|Yokd|ekj]

,e ,l lgkj.k ,o| bn| 'kek|

xg| vu|lèkku fun|'kky;] djuky] gfj;k.kk

क्षेत्रफल एवं उत्पादन की दृष्टि से गेहूँ रबी की सबसे महतवपूर्ण फसल है। भारतवर्ष में गेहूँ की खेती लगभग 29.5 मिलियन हैक्टर भूमि में की जाती है। विश्व में भारत की जनसंख्या का दूसरा स्थान होने के कारण देश में खाद्यान्न फसलों के उत्पादन की अत्यधिक आवश्यकता है। अतः यह जानकारी आवश्यक हो जाता है कि गेहूँ में बुआई की विभिन्न तकनीकों को अपनाए जाने के फलस्वरुप कौन सी तकनीक रोग की संभावना एवं अत्यधिक उत्पादन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

Ikfjp;

गेहूँ में लगने वाले मुख्य रोगों में चूर्णिल आसिता यानि पाउडरी मिल्ड्यू रोग भी महत्वपूर्ण है प्रस्तुत लेख में इस रोग की संभावना एवं अत्यधिक उपज को ध्यान में रखते हुए बुआई की विभिन्न तकनीकों पर एक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

jkx dk i|dki

देश के हर उस क्षेत्र में जहां कहीं भी गेहूँ का उत्पादन किया जाता है वहां इस रोग का प्रकोप देखा गया है।

jkx dk i|lkj

आजकल यह रोग उत्तरी पर्वतीय तथा उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में काफी फैलने लगा है क्योंकि इन क्षेत्रों में उगायी जाने वाली प्रजातियों में इस रोग के प्रति प्रतिरोधी क्षमता कम होती है।

jkx dk Yk{k.k

यह रोग ठंडे प्रदेशों में पाया जाता है, जो ''ब्लूमेरिया ग्रैमिनिस ट्रिटिसाई'' नामक कवक से होता है। यह रोग जनक ग्रीष्मकाल में फसल अवधि में उत्तरी मैदानी क्षेत्रों में फैलकर गेहूँ की फसल को

संक्रमित करता है। इस रोग के प्रभाव से पत्तियों की ऊपरी सतह पर गेहूँ के आटे के रंग के समान सफेद धब्बे के रुप में बिखरे दिखाई देते हैं जो उपयुक्त समय पा कर बालियों तक पहुंच जाते हैं। इस प्रकार का संक्रमण गेहूँ की फसल में मध्य फरवरी से मध्य मार्च तक संक्रमित क्षेत्रों में देखा जा सकता है। मार्च महीने के अंतिम दिनों मे जब तापमान बढ़ने लगता है इन सफेद–भूरे धब्बों में सूई की नोंक के आकार के गहरे भूरे ''क्लिस्टोथिसिया'' बनने लगते हैं जिससे इस रोग का फैलाव रुक जाता है।

jkx l gkfu

इस रोग से संक्रमित पत्तियां पीली एवं फिर भूरी पड़कर सुख जाती हैं जिससे प्रकाश संश्लेषण की दर प्रभावित होती है।

- रोगी पौधों में कल्ले कम बनते हैं तथा दाने हल्के एवं सिकुड़े हुए बनते हैं।
- फसल की प्रारंभिक अवस्था में यदि यह रोग प्रभावी हो जाए तो उत्पादन में भारी कमी होती है।
- यह रोग मेंड़ पर की गई बुआई तथा पेड़ों की छाया वाली फसल में अधिक लगता है।

l lkèku l j{k.k rduhdk e jkx l Hkkouk ,o mRiknu LRkj

गेहूँ की दो उन्नत किस्मों डी.बी.डब्ल्यू. 17 एवं पी.बी.डब्ल्यू. 343 की बुआई, मेंड़ पर बुआई, साधारण बुआई एवं शून्य कर्षण तकनीक पद्धति में कराई गई और निम्न परिणाम एवं जानकारी प्राप्त की गई।

eM ij cvkb

यह एक नवीनतम संरक्षण तकनीक है जिसमें बुआई मेंड़ बनाकर की जाती है। यह पद्धति गेहूँ की फसल में सिंचाई की आवश्यकता कम करती है, परन्तु ''पाउडरी मिल्ड्यू'' रोग की संभावना भी इसमें अधिक होती है। रोग के लक्षण भी सर्वप्रथम इस तकनीक में दिखाई देते हैं जिनका प्रसार तापक्रम बढ़ने से तेजी से होता है। रोग के लक्षण प्रत्येक वर्ष के मध्य फरवरी में दिखाई देने लगते हैं जो मध्य मार्च तक फसल के नीचले सतही तनों से पत्तियों और फिर बालियों तक पहुंच जाते हैं। इनके रोग परिसर एवं रोग फैलाव भी अन्य संसाधन संरक्षण तकनीक के तुलना में अधिक होता है।

'kU; d"k.k rduhd

संसाधन संरक्षण की इस वैज्ञानिक पद्धति में गेहूँ की बुआई के लिए यह सर्वोतम लाभदायक तकनीक है जिसमें विशेष रुप से तैयार की गई 'बीज संग उर्वरक' डालने वाले यंत्र का प्रयोग किया जाता है। इस विधि का लाभ यह भी है कि बुआई की गई गेहूँ की फसल में प्रमुख खरपतवार जैसे मंडूसी (गेहूँ का मामा) एवं दीमक का प्रकोप कम रहता है। पाउडरी मिल्ड्यू के साथ–साथ करनाल

बंट जैसी गंभीर बीमारी भी इस तकनीक के इस्तेमाल से कम होती है। यदि हम पाउडरी मिल्ड्यू रोग प्रसार एवं प्रादुर्भाव पर गौर करें तो शून्य कर्षण तकनीक में अन्य तकनीक कि तुलना में यह रोग काफी कम आता है। रोग के लक्षण भी फरवरी माह के अंतिम दिनों या शुरुआती मार्च महीनों में दिखाई देते हैं। रोग का फैलाव एवं रोग परिसर भी मेंड़ पर बुआई एवं साधारण बुआई की तुलना में कम होता है। वहीं उत्पादन क्षमता मेंड़ पर बुआई के बराबर एवं साधारण तकनीक के तुलना में थोड़ी कम होता है।

Lkkèkkj.k rduhd

बुआई की इस तकनीक में परंपरागत तरीके से खेत तैयार की जाती है तत्पश्चात् बीज की बुआई की जाती है। इस तकनीक में पाउडरी मिल्ड्यू रोग मेड़ बुआई की तुलना मे थोड़ी कम परन्तु शून्य कर्षण तकनीक से अधिक होता है। रोग के लक्षण भी इस तकनीक में वर्ष के मध्य फरवरी महीने में ठंडे प्रदेशों में दिखाई देने लगते हैं। यदि उपज की दृष्टिकोण से देखा जाए तो साधारण तकनीक में उत्पादन दो वर्षों के अध्ययन के दौरान अधिक पाया गया। अतः हमें उपर्युक्त शोध अध्ययन से यह जानकारी प्राप्त हुई की मेड़ एवं शून्य कर्षण तकनीक की तुलना में साधारण तकनीक से की बुआई में उत्पादन अधिक हुआ। गेहूँ की फसल में लगने वाले इस रोग के फैलने का आंकड़ा (0–9) पैमाने के आधार पर रोग के पहले प्रादुर्भाव एवं पौधे के पत्तियों एवं तनों में संक्रमण प्रभाविता के आधार पर आंका जाता है।

lkj.kh 1- ¼0&9½ iekuk ij fy;k x;k vkdMk

पैमाना	प्रतिशत
0	कोई बीमारी नहीं
1	10 प्रतिशत एवं इससे अधिक भाग प्रभावित
2	11–20 प्रतिशत एवं इससे अधिक भाग प्रभावित
3	21–30 प्रतिशत एवं इससे अधिक भाग प्रभावित
4	31–40 प्रतिशत एवं इससे अधिक भाग प्रभावित
5	41–50 प्रतिशत एवं इससे अधिक भाग प्रभावित
6	51–60 प्रतिशत एवं इससे अधिक भाग प्रभावित
7	61–70 प्रतिशत एवं इससे अधिक भाग प्रभावित
8	71–80 प्रतिशत एवं इससे अधिक भाग प्रभावित
9	81 प्रतिशत एवं इससे अधिक भाग प्रभावित

jksx izcèku

- इस रोग के रोकथाम में फसल–चक्र का प्रयोग अति उत्तम माना जाता है।
- इस रोग के बचाव का सबसे आसान और प्रभावी उपाय है फसलों की रोगरोधी किस्मों का चयन।
- रासायनिक नियंत्रण द्वारा भी इस रोग पर नियंत्रण पाया जा सकता है, कुछ प्रमुख रसायन जैसे टिल्ट (प्रोपीकोनाजॉल), फोलिकर तथा बंपर इत्यादि के संतुलित मात्रा में छिड़काव लाभकारी होता है।

उचित संसाधन प्रबंधन द्वारा माल्ट जौ उत्पादन

, ,l [kjc] fnu'k dekj] fo".k dekj] tkxUn flg] vkj lYokdekj ,o enu yky
xgw vulèkku funs'kky;] djuky] gfj;k.kk

भारत में जौ सुधार पर अनुसंधान 1920 से 1930 के बीच आरंभ हुआ और लाईन चुनाव से ही बहुत सी प्रजातियाँ विकसित हुई। यह प्रजातियाँ माल्ट जौ प्रयोग के उद्देश्य से विकसित नहीं हुई थी परन्तु कुछ प्रजातियों को दाने का आकार अच्छा होने के कारण माल्ट में भी प्रयोग होने लगा। उत्तर भारत के मैदानी क्षेत्रों की औद्योगिक मांग को पूरा करने के लिए क्लीपर नामक प्रजाति को आस्ट्रेलिया से वर्ष 1969 में आयात किया गया। यह द्वि पंक्ति प्रजाति देर से पकने वाली थी, इसलिए यह अधिक प्रचलित नहीं हो सकी। वर्ष 1974–75 के दौरान इग्लैंड से आयातित तीन द्वि पंक्ति जौ प्रजातियाँ; गोल्डन, युनिवर्सल तथा मिडास का अखिल भारतीय जौ सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत चार स्थानों पर मूल्यांकन किया गया परन्तु इनका उत्पादन देश में विकसित छः पंक्ति वाली जौ की प्रजातियों से काफी कम रहा। अस्सी के दशक के उत्तरार्द्ध में भारत सरकार की आर्थिक सुधार एवं उदार नीतियों के अन्तर्गत नई मद्य कम्पनियों को लाइसेंस देने से माल्ट के लिये जौ की मांग अचानक बढ़ गई।

माल्ट के लिए जौ की सालाना आवश्यकता के बारे में कोई आधिकारिक आंकड़े उपलब्ध नहीं हैं। परन्तु औद्योगिक इकाईयों की क्षमता के हिसाब से माल्ट के लिए जौ की प्रति वर्ष लगभग 240–250 हजार मीट्रिक टन की आवश्यकता होती है। नई इकाईयों के लगने से माल्ट जौ की वार्षिक आवश्यकता में लगभग 10 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हो रही है। इस समय माल्ट के लिये जौ की उपलब्धता की अधिक समस्या नहीं है परन्तु गुणवत्ता के हिसाब से पूरी तरह सही नहीं है। वर्तमान में देश के कुल जौ उत्पादन का 25 प्रतिशत भाग ही माल्ट बनाने के काम आता है। माल्ट के अनेक उपयोग होते हैं जैसे बीयर, व्हिस्की, ऊर्जावान पेय (माल्टोवा, हार्लिकस) चॉकलेट तथा औषधि निर्माण आदि। बीयर बनाने में माल्ट का प्रयोग लगातार बढ़ रहा है। एक अनुमान के अनुसार देश में बने कुल माल्ट जौ का लगभग 60 प्रतिशत बीयर, 25 प्रतिशत शक्तिवर्धक पेय एवं चाकलेट, 7 प्रतिशत औषधीय तथा 8–10 प्रतिशत माल्ट व्हिस्की बनाने में प्रयोग होता है।

गेहूँ अनुसंधान निदेशालय के अन्तर्गत माल्ट जौ सुधार कार्यक्रम – गेहूँ अनुसंधान निदेशालय, करनाल द्वारा माल्ट जौ कार्यक्रम आरंभ करने हेतु द्वि पंक्ति जौ इकार्डा (सीरिया), सिम्मिट (मैक्सिको), आस्ट्रेलिया, डेनमाक्र तथा अर्जेन्टीना से जननद्रव्य के रुप में लाया गया और 1988 से 1993 के बीच कई स्थानों पर नर्सरी उगाकर उत्पादन एवं परीक्षणों द्वारा मूल्यांकन किया गया। उन्हीं में से अल्फा 93 द्वि पंक्ति जौ प्रजाति सन् 1994 में अनुमोदित की गई यह प्रजाति मुख्यतः सिंचित दशा में समय से बुआई एवं व्यवसायिक खेती हेतु उत्तर पश्चिमी भारत के मैदानी क्षेत्रों के लिए अनुमोदित की गई। 1997 में रेखा (बी.सी.यू. 73) द्वि पंक्ति बोई, जल्दी पकने वाली तथा अधिक माल्ट उत्पादन वाली माल्ट

जौ प्रजाति (इकार्डा नर्सरी के द्वारा आयातित) को मूल्यांकन उपरान्त पहाड़ी क्षेत्रों को छोड़कर पूरे भारत के लिए माल्ट जौ की व्यावसायिक खेती के लिए अनुमोदित किया गया। इसके मोटे एवं एक समान दानों एवं जल्दी पकने वाले गुणों के कारण इसे अधिक क्षेत्र में खेती के योग्य प्रजाति के रुप में मान्यता मिली। कुछ छः पंक्ति वाली जौ की प्रजातियां जैसे आर डी 2503, के 551 एवं डी एल 88 भी विकसित की गईं और उन्हें अच्छी माल्ट गुणवत्ता के कारण सिंचित क्षेत्रों के लिए अनुमोदित किया गया। इनकी माल्ट गुणवत्ता द्वि पंक्ति प्रजातियों के काफी कठिन पायी गयी। अनुसंधान प्रयासों के फलस्वरुप देश में संकरण विधि से विकसित पहली माल्ट जौ प्रजाति डी डब्ल्यू आर 28 को उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में सिंचित खेती के लिए वर्ष 2002 में अनुमोदित किया गया। इसके उपरान्त वर्ष 2006 में यूनाईटेड ब्रुअरीज कम्पनी के साथ सहभागी अनुसंधान के फलस्वरुप सर्वाधिक पैदावार देने वाली द्वि पंक्ति माल्ट जौ प्रजाति डी डब्ल्यू आर यू बी 52 का अनुमोदन किया गया। इस प्रजाति में अच्छी गुणवत्ता और उच्च रोगरोधिता भी है। इसी अवधि में दुर्गापुरा (जयपुर) केन्द्र से भी इसी प्रकार की माल्ट जौ प्रजाति आर डी 2668 विकसित की गयी। उत्तरी राजस्थान, दक्षिणी हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश तथा दक्षिणी पंजाब आदि क्षेत्र रेतीली भूमि तथा दाने के विकास के लिए कम तापमान अधिक समय तक उपलब्ध होने से बेहतर किस्म की माल्ट जौ पैदा कर सकते हैं क्योंकि इन क्षेत्रों में बाली निकलने की अवस्था अन्य क्षेत्रों से पहले आ सकती है।

lkj.kh 1- fofHkUu mRiknu fLFkfr;ksa ds fy, ekYV tkS dh iztkfr;ka

ekYV tkS iztkfr	cqvkbZ dh n'kk	iztkfr	o"kZ	mRiknu ¼dq-@gS-½	mRiknu {ks=
द्वि पंक्ति	सिंचित	अल्फा 93	1994	36.8	उत्तर पश्चिमी मैदानी भाग
	समय से बुआई	बी सी यू 73	1997	38.1	पंजाब, हरियाणा, पश्चिमी उत्तर प्रदेश, राजस्थान, (कोटा एवं उदयपुर भाग को छोड़कर)
		डी डब्ल्यू आर 28	2002	41.3	
		डी डब्ल्यू आर यू बी 52	2006	45.1	
		आर डी 2668	2006	42.5	
	सिंचित देर से बुआई	डी डब्ल्यू आर बी 73	2011	38.70	
		डी डब्ल्यू आर बी 91	2012	40.62	
छः पंक्ति	सिंचित देर से बुआई	डी डब्ल्यू आर यू बी 64	2012	40.50	
	सिंचित समय से बुआई	आर डी 2503	1997	36.1	उत्तर पूर्वी मैदानी भाग
		के 551	1997	32.4	
		डी एल 88	1997	33.4	प्रायद्वीपीय क्षेत्र

डी डब्ल्यू आर यू बी 52

डी डब्ल्यू आर यू बी 64

Lkkj.kh 2- c|vkbZ dk le;] cht nj ,oa moZjd mRiknu dh ek=k

mRiknu mn~ns';	cht nj ¼fd-xk-@gs-½	c|vkbZ dk le;	moZjd ¼fd-xk-@gs-½		
			u=tu	QkLQksjl	iksVk'k
सिंचित दशा में समय से बुआई हेतु माल्ट जौ	100	1 नवम्बर से 25 नवम्बर	90	30	20
सिंचित दशा देर से बुआई हेतु माल्ट जौ	125	26 नवम्बर से 20 दिसम्बर	60	30	20

बीज की उचित मात्रा : माल्ट जौ की समय पर बुआई के लिये 100 कि.ग्रा. /है. बीज का प्रयोग करना चाहिये। पछेती बुआई के लिए 20–25 प्रतिशत अधिक बीज डालनी चाहिये। पौधों की संख्या, बढ़ाकर, कम फुटाव के प्रभाव को कम करके उत्पादन में बढ़ोत्तरी की जा सकती है।

बीज उपचार : बीज का उपचार जीवाणु खाद से किया जाए तो उत्पादन में बढ़ोत्तरी की सम्भावना रहती है। इससे कम खर्च करके मृदा की उर्वरता एवं जल धारण क्षमता में बढ़ोत्तरी कर सकते हैं। जौ में दीमक से बचाव के लिए कान्फीडोर कीटनाशक से बीज का उपचार करें। खुली कंगियारी से बचाव के लिए 2 ग्राम वीटावैक्स या बावीस्टीन से प्रति एक किलोग्राम बीज उपचारित करें। बंद कंगियारी के नियंत्रण हेतू थीरम तथा बावीस्टीन/वीटावैक्स को 1:1 के अनुपात में मिलाकर 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम अथवा रेक्सिल 1 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के लिए प्रयोग करें।

बुआई का तरीका : बुआई के समय बीज की गहराई 5 सें. मी. से अधिक नहीं होनी चाहिए। समय पर बुआई करने पर पंक्ति से पंक्ति की दूरी 18–20 सें. मी. रखें जबकि पछेती बुआई में यह दूरी 18 सें.मी. रखनी चाहिए। पतली पत्तियों एवं कम फैलाव वाले पौधे होने से नई माल्ट जौ प्रजातियों में दूरी 18 सें.मी. करके उत्पादन में बढ़ोत्तरी कर सकते हैं।

खाद की मात्रा एवं प्रयोग का समय : माल्ट जौ प्रजातियों के लिये नत्रजन की मात्रा 90 कि. ग्रा. हैक्टर है। माल्ट जौ में नत्रजन खाद की आधी मात्रा तथा फास्फोरस तथा पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के समय देनी चाहिए। नत्रजन की आधी मात्रा 40–45 दिन के बाद सिंचाई के उपरान्त देनी चाहिए। बाद वाली नत्रजन की आधी मात्रा को भी दो भागों में बांटा जा सकता है। गोबर की खाद 5 टन प्रति हैक्टर का प्रयोग करने पर 25 प्रतिशत नत्रजन की मात्रा कम की जा सकती है। इससे उत्पादन अधिक होने के साथ–साथ मृदा की उर्वराशक्ति भी बनी रहती है।

सिंचाई : माल्ट जौ की फसल में पहली सिंचाई की अवस्था बुआई के 30–35 दिन बाद मानी गई है। इस समय शिखर जड़ें विकसित होती हैं जिससे फुटाव प्रभावित होता है। गुणवत्ता वाली माल्ट जौ में कम से कम तीन सिंचाई देना जरुरी है। बुआई के 30–35, 60–65 तथा 90–95 दिन बाद देनी चाहिए। माल्ट जौ से भरपूर पैदावार लेने हेतु तीन सिंचाईयाँ ही आवश्यक हैं। पानी की कमी होने से उपरोक्त समयानुसार सिंचाई करने से उत्पादन में होने वाली कमी को रोका जा सकता है।

खरपतवार नियन्त्रण : यद्यपि जो एक ऐसी फसल है जो बढ़ोत्तरी एवं फैलाव के कारण खरपतवार को अधिक बढ़ने नहीं देती फिर भी चौड़ी एवं संकरी पत्ती वाले खरपतवारों के नियन्त्रण हेतु आइसोप्रोटूरान तथा मैटसल्फूरान का छिड़काव किया जा सकता है। केवल संकरी पत्ती वाले खरपतवार जैसे गुल्ली डंडा जो आइसोप्रोटूरान से नियंत्रित नहीं हो पाते, के लिए पीनोक्साडेन (एक्सिल) का प्रयोग करें। इससे फसल के लिए आवश्यकत नमी एवं पोषक तत्व सुरक्षित रहते हैं। जौ की फसल में खरपतवार नियन्त्रण का संक्षिप्त विवरण सारणी 3 में दिया गया है जिसे अपनाकार माल्ट जौ की भरपूर पैदावार प्राप्त की जा सकती है।

Lkj.kh 3- ekYV tk dh Qly e [kjirokj fu;U=.k

[kjirokj	[kjirokjuk'kh	ek=k	Mkyu dk le;
चौड़ी पत्ती वाले खरपतवार	2–4, डी	500 ग्राम	बुआई के 30–35 दिन बाद 400–500 लीटर पानी में
	मैटसल्फयूरान	4 ग्राम	
संकरी पत्ती वाले खरपतवार	आइसोप्रोटूरान	100 ग्राम	
	पीनोक्साडेन (एक्सिल) 30–35 ग्राम	30–35 ग्राम	
चौड़ी व संकरी पत्ती	आइसोप्रोटूरान + 2–4, डी	750–500 ग्रा.	
	आइसोप्रोटूरान + मैटासल्फयूरान	750–500 ग्रा.	

कटाई एंव भंडारण : माल्ट जौ की फसल मार्च के अन्त से अप्रैल के प्रथम पखवाड़े तक कटाई के लिये तैयार हो जाती है। जौ को अधिक पकने से पहले की काटना चाहिए ताकि बालियां को टूटने तथा दाने झड़ने से बचाया जा सके। माल्ट जौ का दाना हवा मे नमी सोखता है अतः सूखे स्थान पर अनाज भंडारण करें ताकि कीड़ों से हानि कम हो।

जौ उत्पादन प्रौद्योगिकी

ykypUn izlkn] Lkrh'k ckjukjs] johUnz izlkn ,oa vuar eMdsekgdj
Ñf"k foKku lsLFkku] dk'kh fgUnw fo'ofo|ky;] okjk.klh] mÙkj izns'k

जौ उत्तर भारत के मैदानी भाग की एक बहुत ही महत्वपूर्ण रबी ऋतु की फसल है। अखिल भारतीय गेहूँ एवं जौ समन्वित सुधार परियेाजना के अनुसार वर्ष 2011–2012 के दौरान 0.65 मिलियन हैक्टर भूमि में 1.61 मिलियन टन जौ का उत्पादन का किया गया और इसकी उत्पादकता 2480 किलोग्राम प्रति हैक्टर रही। यह मानव के लिए एक प्रमुख भोजन, पशुओं के लिए चारा और बीयर व्हिस्की के उत्पादन में एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। गेहूँ या जई की तुलना में जौ की खेती अनुपयुक्त भूमि और ऊँचाई पर भी अच्छे ढंग से की जा सकती है। भारत वर्ष में जौ की खेती मुख्यतः राजस्थान, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, जम्मू कश्मीर एवं गुजरात में की जाती है। जौ उत्पादन के कुल क्षेत्रफल में उत्तर प्रदेश (34 प्रतिशत), राजस्थान (30 प्रतिशत) और मध्य प्रदेश (12 प्रतिशत) का संपूर्ण योगदान का लगभग 80 प्रतिशत है। राजस्थान क्षेत्रफल के मामले में भले ही दूसरे स्थान पर है, लेकिन राज्य में अच्छी उपज के कारण यह उत्पादन के मामले में सबसे आगे है। जौ के कुल उत्पादन में राजस्थान 40 प्रतिशत, उत्तर प्रदेश 31 प्रतिशत, मध्य प्रदेश 9 प्रतिशत तथा हरियाणा का 6 प्रतिशत योगदान है।

सीमांत भूमि, लवणयुक्त/क्षारीय भूमि या पानी की कम उपलब्धता वाली भूमि जैसे बारानी क्षेत्र में जौ की खेती से अच्छी उपज प्राप्त की जा सकती है। माल्ट एवं बीयर बनाने के उद्देश्य से हरियाणा एवं राजस्थान में अच्छे प्रबंधन में अच्छी गुणवत्ता वाले दानों के लिए भी इसकी खेती की जा रही है। अन्य आवश्यक वस्तुओं की तरह, जौ की फसल का भी एक न्यूनतम समर्थन मूल्य होता है। यह कीमत किसानों के लिए एक सीमा को सुनिश्चित करती है और बाजार की कीमतों को कटाई के चरम सीमा के दौरान भी उस स्तर से नीचे नहीं गिरने देती।

tkS dk vkS|ksfxd egRo

औद्योगिक प्रयोग के लिए जौ की उपयुक्त किस्मों का चयन करके उसे उचित प्रबंधन में समय से उगायें एवं कटाई करें। प्राचीन काल में जौ की खेती मुख्यतः आटा एवं सत्तू के लिए की जाती थी। साथ ही इसका प्रयोग जानवरों के आहार के रूप में किया जाता है। जौ के दानों, भूसा एवं हरी फसल का प्रयोग दुधारू पशुओं को खिलाने में प्रयोग किया जाता है। जौ के अन्य महत्वपूर्ण उपयोगों में माल्ट आधारित चाकलेट, शिशु आहार, दुग्ध आधारित पेय, बीयर एवं व्हिस्की आदि हैं। जौ का औषधिक प्रयोग मूत्रवर्धक के रूप में गुर्दे की पथरी आदि में आराम दिलाने हेतु किया जाता है। बच्चों, बूढ़ों व बीमार व्यक्तियों के लिए यह एक सुग्राही, सुपाच्य ठण्डा प्रभाव रखने वाला अन्न

है। मधुमेह के मरीजों के लिए यह दवा का काम करता है। पेट में ठण्डा प्रभाव रखने के कारण अतिसार, संग्रहणी की समस्या से निजात दिलाता है।

जौ की माल्ट किस्मों में के. 551, रेखा, अल्फा 93 (द्वि पंक्ति), डी.डब्ल्यू.आर.यू.बी 52, आर.डी. 2668, आर.डी. 2503, डी.डब्ल्यू.आर. 28 प्रजातियां उपज देने के साथ ही साथ माल्ट बीयर बनाने के लिए संस्तुत की गयी हैं जिसकी बुआई करके किसान कम्पनियों को बेचकर लाभ उठा सकें। ऐसा देखा गया है कि जिस खेत में जौ की फसल ली जाती है उसमें गेहूँ का मामा (फैलेरिस माइनर) कम हो जाता है कारण चाहे जो भी हो। जिससे इस खर (गेहूँ के मामा) से राहत मिल जाती है बिना खरपतवारनाशी (आइसोप्रोटूरॉन) का उपयोग किये ही।

जौ का सत्तू, चबैना (दाना) भूनकर बनाया जाता है, जौ के सत्तू का, पानी+नमक या चीनी के साथ घोल बनाकर पीने से गर्मी की तपन मिट जाती है जिससे गर्मियों में बचा जा सकता है। जौ के साथ मसूर+मटर+चना का जूस (शोरबा) बनाकर पीने से पेशाब सम्बन्धी बिमारी, माहवारी व प्रसूति काल में फायदा होता है, तथा दूध देते रहने के समय में इजाफा होता है। इस जूस के पीने से चर्म रोग से भी छुटकारा पाया जा सकता है। जौ + चन्दन + हल्दी + ग्लीसरीन के लेप से चमड़ी की कामनीयता में निखार आता है। इसी गुण के कारण जौ के आटे हल्दी बेसन व सरसों के तेल का लेपन शादी–विवाह के शुभ अवसर पर शादी के पहले शरीर पर किया जाता है। जिससे शरीर की त्वचा में एक अनुपम निखार अल्प अवधि में आ जाता है। इसका दाना पशुओं को चारे के रुप में देने पर अन्डों का आकार व गुणवत्ता बढ़ती है तथा मांस वाले पशुओं का वजन और मांस के गुण में भी इजाफा होता है।

प्रत्यक्ष मानव उपयोग के अलावा, जौ बीयर, खाद्य प्रसंस्करण और भारत में फीड उद्योगों द्वारा किया जाता है। बीयर और फीड उद्योगों से जौ की वार्षिक मांग क्रमशः 60,000 टन और 25,000 टन है। हाल के समय में शहरी भागों में बीयर के लिए बढ़ती मांग को देखते हुए भारतीय बीयर निर्माण इकाईयों द्वारा माल्ट जौ की मांग में वृद्धि हुई हो रही है।

feVVh

भारत में जौ की खेती इंडो–गंगा के मैदानी इलाकों से लेकर और पहाड़ियों के सीढ़ीदार ढलानों पर, भारी दोमट रेतीले मिट्टी में एक विस्तृत विविधता पर की जाती है। उत्तर भारत के मैदानी भागों की बलुआही मिट्टी से लेकर मध्यम भारत की दोमट मिट्टी जिनकी प्रतिक्रियात्मकता उदासीन से मृदु लवणता तक है, जौ की खेती के लिए उपयुक्त भूमि है। वैसे इसकी खेती अनेकों प्रकार की भूमि पर की जा सकती है जैसे लवणीय, क्षारीय या हल्की मिट्टी। लवणरोधी होने के कारण पश्चिमी बंगाल के सुन्दरवन की तटीय लवणीय भूमि एवं उत्तरी कर्नाटक के नहरों के सिंचित क्षेत्रों के लवणीय काली मिट्टी में भी इसकी खेती संभव है। जौ पर्णाधान उपजाऊ, दोमट मिट्टी या हल्की

मिट्टी पर सबसे अच्छी उपज देता है। अगर जलग्रस्त हुआ तो भारी दोमट मिट्टी अवांछनीय है। अन्य फसलों की तुलना में जौ नमकीन, क्षारीय भूमि के लिए अधिक और अम्लीय मिट्टी के लिए कम सहिष्णु है, इसलिए यह राजस्थान, हरियाणा, पंजाब, बिहार, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में इन शर्तों के तहत अच्छी फसल है।

lkj.kh 1- tk dh ie[k itkfr;k

mRiknu fLFkfr	mÙkj if'peh enkuh {k=	mÙkj iohZ enkuh {k=	mÙkjh iorh; {k=	Ikk;}hih; {k=
सिंचित (1)समय से बुआई (2) देर से बुआई	आर डी 2552, आर डी 2035, आर डी 2503, पी एल 426 आर डी 2508,डी एल 88,	आर डी 2503 आर डी 2552 के 508 के 551 आर डी 2508 मंजुला एन. डी. बी. 1020	— —	— —
बारानी	आर डी 2508 के 560 पी एल 419	आर डी 2508, के 560, के 603, गीतांजली' करन 16* एन. डी. बी. 10*	बी एच एस 169 एच बी एल 113 एच बी एल 276' एच बी एल 316	— —
क्षारीय एवं लवणीय	आर डी 2552 डी एल 88	आर डी 2552, एन डी बी 1173 आजाद, डी एल 88	— —	— —
निमेटौड (मोल्या) ग्रसित	आर डी 2035 आर डी 2052	— —	— —	— —
मॉल्ट जौ	बी सी यू 73 अल्फा 93 डी डब्ल्यू आर यू बी 52, डी डब्ल्यू आर यू बी 64 आर डी 2668, आर डी 2503, डी डब्ल्यू आर 28	के 551, बी सी यू 73	— —	बी सी यू 73 डी एल 88

* छिलका रहित प्रजातियाँ

Ckh t kipkj

बीज से पैदा होने वाली बिमारियों पर नियंत्रण के लिए बीज उपचार आवश्यक है। प्रतिरोधी किस्मों या रासायनिक नियंत्रक उपायों के द्वारा जौ की रोग मुक्त फसल प्राप्त की जा सकती है। खुली कंगियारी से बचाव के लिए 2 ग्राम वीटावैक्स या बावास्टीन से प्रति एक किलोग्राम बीज उपचारित करें। बंद कंगियारी के नियंत्रण हेतू थीरम तथा बावास्टीन/वीटावैक्स को 1:1 के अनुपात में मिलाकर 2.5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज के लिए प्रयोग करें। दीमक से बचाव के लिए 150 मि.ली. क्लोरपायरिफॉस (20 ई.सी.) या 250 मि.ली. फोरमेथियान (25 ई.सी.) को पाँच लीटर पानी में डाल कर घोल बना लें और इससे 100 कि.ग्रा. बीज का उपचार कर सकते हैं। दीमक, चींटी एवं अन्य कीड़े–मकोड़ों से बचने के लिए बीज उपचार आवश्यक है।

[kr dh r;kjh

भूमि का समतलीकरण एवं ऊँचे मेड़ बनाना आवश्यक है ताकि वर्षा का पानी खेतों में जमा हो सके। जौ की बुआई के लिए एक जुताई मिट्टी पलट हल से एवं एक हैरो लगाकर और समतलीकरण कर लेना पर्याप्त है। समतलीकरण बीज की बुआई, उर्वरक का छिड़काव और सिंचाई के समान वितरण में मदद करता है।

lkj.kh 2- cqvkbZ dk le;] cht nj] njh ,oa moZjd dh ek=k

mRiknd ifjfLFkfr	Ckht nj ¼fd-xk-@,dM½	cqvkbZ dk le;	njh ¼l-eh-½ dM l dM	moZjd dh ek=k ¼fd-xk-@g-½
सिंचित				
(1) समय से	40	10–25 नवम्बर	23	60 नत्रजन : 30 फास्फोरस : 20 पोटाश
(2) देर से	50	26 नवंबर से 31 दिसंबर	18	
बारानी				
(1) मैदानी भाग	40	25 अक्तूबर से 10 नवंबर	23	30 नत्रजन : 20 फास्फोरस : 20 पोटाश
(2) पर्वतीय भाग	40	20 अक्तूबर से 7 नवंबर	23	40 नत्रजन : 20 फास्फोरस : 20 पोटाश

cqvkbZ dh fofèk

बुआई की सबसे उपयुक्त विधि सीड ड्रील है। देशी हल के पीछे बीज डालकर या हल के पीछे लगे चोंगे में भी बीज डालकर बुआई की जाती है। देशी हल या छींटा विधि की अपेक्षा ड्रील से पंक्तिबद्ध बुआई करना उत्तम है। बीज एवं मिट्टी के अच्छे संपर्क के लिए समुचित ढंग से पाटा लगाकर मिला देना चाहिए।

Qly&pØ

फसल–चक्र, फसल के लाभ की पेशकश पर काफी हद तक निर्भर करता है। इसका फसल–चक्र गेहूँ के समान है, लेकिन आमतौर पर साल दर साल कोई सटीक चक्र का पालन नहीं किया जाता है। देश के विभिन्न भागों में आमतौर पर यह बाजरा, मक्का, चावल, कपास, मूँगफली और मूँग के साथ चक्र में उगाई जाती है। शोधकर्ताओं ने शुष्क क्षेत्रों में दोहरी फसल की सम्भावना जताई है, जैसे की बरसात के मौसम (खरीफ) में लघु अवधि (60–65 दिन) वाली चारा फलियाँ (लोबिया, क्लस्टर बीन, सेम आदि) और उसके पश्चात संचित नमी पर जौ की फसल लगाई जाए। लेकिन दोहरी फसल के लिए मिट्टी में नमी की पर्याप्त मात्रा होना जरूरी है।

flapkbZ

जौ सिंचित के साथ–साथ पानी की कमी वाले क्षेत्रों में भी उगाया जाता है। सामान्यतया इसके लिए 2–3 सिंचाई की आवश्यकता होती है। पानी की उपलब्धता के आधार पर सिंचाई अवस्था पहचाननी चाहिए। रेतीली मिट्टी पर एक या दो अतिरिक्त सिंचाई की जरूरत होती है। यदि पानी की उपलब्धता हो तो तीन सिंचाई करनी चाहिए। पहली सिंचाई कल्ले निकलते समय (बुआई के 25/30 दिन बाद) तथा दूसरी बाली आने की अवस्था (बुआई के 65–70 दिन बाद) और तीसरी दाना भरने की प्राथमिक अवस्था के समय (बुआई के 80–85 दिन बाद) पर देनी चाहिए। यदि दो सिंचाई उपलब्ध हों तो पहली सिंचाई कल्लें निकलते समय (बुआई के 25–30 दिन बाद) तथा दूसरी बाली आने की अवस्था (बुआई के 65–70 दिन बाद) पर देनी चाहिए। यदि सिर्फ एक सिंचाई उपलब्ध हो तो इसे बुआई के 35–40 दिन बाद देनी चाहिए। अच्छी पैदावार, दानों की एकरुपता एवं उच्च गुणवत्ता सुनिश्चित करने हेतु माल्ट जौ को 3–4 सिंचाई की आवश्यकता होती है।

[kjirokj fu;a=.k

आमतौर पर सिंचित क्षेत्रों में खरपतवार अधिक समस्या उत्पन्न करते हैं। खरपतवार की आबादी जौ की बुआई से पहले हुई जुताई की दशाओं पर काफी हद तक निर्भर करती है। खरपतवार से नुकसान को रोकने के लिए पहली सिंचाई के बाद हैन्ड हो से निराई–गुड़ाई काफी उपयोगी है। वैसे तो जौ की फसल शीघ्र बढ़ने वाली होती है तथा इसकी जड़ों से अल्कलायड उत्पन्न होता है, जो आम खरपतवारों के नष्ट करने का कारण होता है। जिससे इसकी जड़ों के करीब जल्दी कोई खरपतवार नहीं उग नहीं पाता है। फिर भी यदि आवश्यकता होतो यथोचित खरपतवार नियंत्रण प्रक्रिया अपनानी चाहिए।

[kjirokj	[kjirokjuk'kh	nok dh ek=k ¼ifr ,dM½	Ik;ksx fofèk
क) चौड़ी पत्ती वाले			
हिरणखुरी, बथुआ, खरबाथु, मैना, सैंजी, कंडाई, वनप्याजी कृष्णनील, वन गाजर	2,4–डी (सोडियम लवण 80 डब्ल्यू पी)	250 ग्राम या 500 मी.ली.	बुआई के 30–35 दिन बाद 120–150 लीटर पानी में
	2,4–डी (एस्टर 38 ईसी)		
	मैटसल्फ्यूरॉन (अलग्रीप 20 डब्ल्यू पी)	8 ग्राम	बुआई के 30–35 दिन बाद 120–150 लीटर पानी में
ख) संकरी पत्ती वाले			
गुल्ली डंडा (कनकी), जंगली जई, राई घास	आइसोप्रोटूरॉन 75 डब्ल्यू पी या	500 ग्राम या	बुआई के 30–35 दिन बाद 120–150 लीटर पानी में
	पिनोक्साडेन (एक्सीयल 5 ईसी)	400 मी.ली.	
	पैन्डीमैथालीन (स्टॉम्प) 30 ईसी	1.5 लीटर	पैन्डीमैथालीन बुआई के तीन दिन के अन्दर
ग) दोनों तरह के खरपतवारों के लिए	आइसोप्रोटूरॉन 75 डब्ल्यू पी +	400 ग्राम +	बुआई के 30–35 दिन बाद 120–150 लीटर पानी में
	2,4–डी एस्टर	300 ग्राम	

dVkbZ ,oa Hk.Mkj.k

जौ की फसल मार्च के अंत से अप्रैल के प्रथम पक्ष तक कटाई के लिए तैयार हो जाती है। झड़ने की प्रवृत्ति के कारण जौ को अधिक पकने से पूर्व ही काट लें ताकि बालियों को टूटने से बचाया जा सके। जौ का दाना हवा से नमी सोखता है अतः सही स्थान पर भण्डारण करें ताकि कीड़ा न लगे।

भारत में जौ उत्पादन हेतु उचित संसाधन प्रबंधन

tkxUn flg] fo”.k dekj] fnu’k dekj ,o , ,l [kjc
xg vulèkku fun'kky;] djuky] gfj;k.kk

जौ भारत में उगाये जाने वाले मोटे अनाजों में से एक महत्वपूर्ण फसल है जो कि रबी मौसम में भारत के उत्तर मैदानी एवं पहाड़ी क्षेत्रों में उगायी जाती है। भारत में फसल का उपयोग विभिन्न रुपों में किया जाता है। जैसे खाद्यान्न के रुप में पशुओं के चारा एवं खाद्यान पदार्थ के रुप में, माल्ट एवं माल्ट सत्वर (एक्सट्रैक्ट) के रुप में। माल्ट एवं माल्ट सत्व (एक्सट्रैक्ट) से विभिन्न प्रकार के मूल्य संवर्धित उत्पाद तैयार किये जाते हैं। जैसे बीयर, बेबी फूड्स, कोकोआ माल्ट पेय, औषधीय सिरप इत्यादि। इसके अलावा पहाड़ी क्षेत्रों में आदिवासी लोग इसे बड़े चाव के साथ खाते हैं। जबकि मैदानी क्षेत्रों में सतत एवं मिसी रोटी परम्परागत रुप से बहुत प्रचलित है।

जौ भारत के विभिन्न राज्यों में उगाया जाता है। जैसेः उत्तर प्रदेश, राजस्थान, मध्य प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, बिहार, हिमाचल प्रदेश, उत्तराखण्ड तथा जम्मू एवं कश्मीर के पहाड़ी इलाके में खाद्य एवं कृषि संगठन (2012) के अनुसार जौ भारत के 0.65 मिलियन हैक्टर क्षेत्र में उगाया जाता है जो कि कुल फसल क्षेत्र का 0.46 प्रतिशत है। इसी प्रकार जौ का उत्पादन 1.61 मिलियन टन है जो कि कुल खाद्यान उत्पादन का 0.81 प्रतिशत योगदान देता है। भारत में उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान जौ के दो मुख्य उत्पादक राज्य हैं। ये दोनो राज्य मिलकर भारत में जौ के कुल क्षेत्रफल का 64 प्रतिशत एवं उत्पादन का 72 प्रतिशत योगदान देते हैं।

tk vulèkku mnns';

भारत में जौ अनुसंधान कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य जौ की नवीनतम प्रजातियों का विकास करना है जो अच्छी पैदावार दे सकें, जिनमें बिमारियों एवं कीटों के प्रति प्रतिरोधकता हो साथ ही जनसंख्या की खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उत्पादकता में लगातार वृद्धि होती रहे। समय के बदलाव के साथ–साथ कृषि से जुड़ी परिस्थितियाँ भी बदली है। जलवायु परिवर्तन में भी काफी बदलाव देखेने को मिल रहा है। कृषि से संबंधित अनेकों समस्याओं और इस बदलते परिवेश में जौ अनुसंधान की आवश्यकताओं, राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा, आद्यौगिक मांग और विश्व बाजार की चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए अनुसंधान के नवीनतम आयामों की जानकारी इस लेख में दी गयी है।

tk vulèkku dh pukfr;k

सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि हमारे देश में जौ अनुसंधान कार्य में प्रमुख चुनौतियां कौन–कौन सी है और उन चुनौतियों से निपटने की रणनीति क्या होनी चाहिए। आज हमारे समक्ष

जौ उत्पादन संबधी प्रमुख चुनौतियां निम्न हैं जिन पर ध्यान केन्द्रित करके अनुसंधान तथा विकास कार्यक्रम तैयार करने की आवश्यकता है।

1. जलवायु परिर्वतन एवं वातावरण में बदलाव।
2. सिंचाई के पानी की कमी
3. भूमि की गुणवत्ता में हो रहा ह्रास
4. जौ की उपज क्षमता में वृद्धि करना
5. रोग रोधिता की समस्या
6. अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के स्तर पर गुणवत्ता का समावेश करना
7. प्रति इकाई आर्थिक लाभ में हो रही कमी
8. पोषक तत्वों की उपलब्धता
9. कृषि विस्तार सेवाओं का सुदृढ़ीकरण

tk mRiknu c<ku dh ub ;ktuk

वर्तमान चुनौतियों को ध्यान में रखते हुए देश में जौ अनुसंधान के क्षेत्र में निम्नलिखित दीर्घकालिक कार्यक्रमों में विशेष उपलब्धियां प्राप्त की जा चुकी हैं और अनेक विकास कार्य प्रारम्भ किये गये हैं।

1. **उत्पादन क्षमता में वृद्धि :** जलवायु परिवर्तन, अधिक मांग, खाद्य–सुरक्षा और कम हो रही खेती योग्य भूमि के परिपेक्ष्य में नई किस्मों की उपज क्षमता बढ़ाना अत्यंत आवश्यक है। अच्छी पैदावार के लिए पहले से ही उपलब्ध विविध लाईनों में गैर अनुकूल लाईनों में उपयोगी गुणों के समावेश के लिए निम्नलिखित प्रयोग किये गये हैं।
   - विविध पैतृक लाईनों का संकरण कर के अच्छी उपज वाली किस्में उत्पन्न करना।
   - आण्विक प्रजनन विधि द्वारा असंबंधित प्रजातियों से प्रचलित जौ की प्रजातियों में उपयोगी जीन का समावेश।
   - उत्पादकता बढ़ाने के लिए संकर किस्म पैदा करना।
2. **रोग रोधिता :** नई किस्मों के विकास में उत्पादन क्षमता के साथ–साथ रोग रोधकता का भी बहुत महत्व है। रोग रोधकता को प्रजनन कार्यक्रमों में हमेशा प्राथमिकता दी गई है। इससे आसानी से उत्पादन बढ़ाने में मदद अवश्य मिलेगी। इस क्षेत्र के विकास के लिए जैवप्रौद्योगिकी की भी मदद ली जा रही है। जौ सुधार कार्यक्रम के अन्तर्गत कुछ ऐसी प्रजातियां विकसित की गयी हैं जो अधिक उपज के साथ–साथ रोगरोधी भी हैं; जैस बी एच एस 169, एच बी एस 113, आर डी 2503, आर डी 2035, रितम्भरा, हरितम, डी एल 88, आर डी 2552, बी एच 393,

आर डी 2624 इत्यादि। अनुसंधान के फलस्वरुप रतुआ और पर्णीय झुलसा जैसी बिमारियों के प्रतिरोधी प्रजातियाँ विकसित की गयी हैं।

3. **तापरोधी किस्मों का विकास :** 21वीं सदी के पहले दशक में अनेकों वातवरण संबंधी परिवर्तन देखने को मिले हैं। वर्ष 2011–12 तक फरवरी–मार्च के महीने में तापमान में अप्रत्याशित वृद्धि हुई जिससे जौ का उत्पादन काफी प्रभावित हुआ है। इसको ध्यान में रखते हुए अनुसंधान कार्य प्रारंभ किया गया है और तापरोधिता के लिए उत्तरदायी विभिन्न स्रोतों का पता लगाया गया ताकि आने वाले प्रभेदों में इन गुणों का समावेश करके उपज को कम होने से बचाया जा सके। इसी क्रम में बी एच एस 352 प्रजाति शीत रोधिता के लिए उपयोगी पायी गई है।

4. **जल भराव के प्रति रोधकता :** पौधे की वृद्धि के शुरुआती दौर में जल भराव के कारण होने वाली हानि को ध्यान में रखते हुए जल भराव के प्रति रोधकता विकसित करने का कार्य भारत में किया जा रहा है। जल भराव के कारण 15 प्रतिशत तक उपज में कमी होती है। सहिष्णु प्रजातियों की तुलना में गंगोरी स्टिरलिंग दावत–5, जिम्मा 6 किस्मों में जल–भराव के प्रति रोधकता पाई गई है।

5. **सीमित सिंचाई पर प्रयोग :** धान–गेहूँ के फसल–चक्र अपनाने से भूमिगत जल का स्तर लगातार गिरता जा रहा है। जौ एक ऐसी फसल है जिसे गेहूँ की तुलना में सिंचाई की कम आवश्यकता होती है तथा सीमित सिंचाई की सुविधा होने पर भी आसानी से उगायी जा सकती है। गेहूँ अनुसंधान निदेशालय एवं इसके सहयोगी केन्द्रो ने जौ की ऐसी प्रजातियाँ विकसित की हैं जो कम सिंचाई की सुविधा होने पर उगायी जा सकती है जैसे हिमानी, के 409 इत्यादि।

6. **मृदा गुणवत्ता ह्रास का समाधान :** अवैज्ञानिक तरीके से किये गये उर्वरकों एवं अन्य रसायनों के प्रयोग, त्रुटीपूर्ण कृषि–प्रणाली आदि के कारण मृदा की गुणवत्ता में लगातार ह्रास हो रहा है। इसको ध्यान में रखते हुए संरक्षण कृषि, टिकाऊ खेती आदि का प्रादुर्भाव हुआ। इन तकनीकों में जीरो टिलेज, मेंड़ पर बुआई, रोटरी टिलेज, स्ट्रिप टिल ड्रील, रोटरी डिस्क ड्रील और टर्बो सीडर आदि शामिल हैं। जौ की कार्बनिक खेती द्वारा मृदा का स्वास्थ्य तथा गुणवत्ता में सुधार लाया जा सकता है।

7. **जुताई तकनीक आधारित किस्मों का विकास :** जौ में जुताई एवं बुआई के लिए प्रयोग की जाने वाली अनेक तकनीकें आशा के अनुरुप प्रदर्शन नहीं कर पा रही हैं। इसको ध्यान में रखते हुए विभिन्न संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियों के लिए अलग–अलग किस्मों के विकास पर अनुसंधान कार्य चल रहा है। पहले से विकसित किस्मों पर विभिन्न जुताई संबंधी तकनीकों के अन्तर्गत परीक्षण किये जा रहे हैं ताकि अधिकतम उपज लेने के लिए तकनीक विकसित की जा सके। साथ ही यह ज्ञात किया जा सके कि किस उत्पादन तकनीक के लिए कौन सी प्रजाति उपयुक्त है।

tk vu|lèkku ,o fodkl gr| Hkfo"; dh j.kuhfr

वर्तमान चुनौतियों और भविष्य की आवश्यकतओं को ध्यान में रखते हुए जौ अनुसंधान तथा विकास को गति प्रदान करने हुत निम्नांकित रणनीति पर कार्य करने की आवश्यकता है।

1. **अन्तर्राष्ट्रीय मानदण्डों के अनुसार जौ की गुणवत्ता :** पारंपरिक रुप से भारत में नई किस्मों का विकास, अधिक उत्पादन एवं रोग रोधकता को ध्यान में रखकर किया जाता है। किन्तु वर्तमान आवश्कताओं, विशेषकर प्रसंस्करण इकाईयों की आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए जौ में गुणवत्ता सुधार एक अहम पहलू बन गया है। वर्तमान में जौ का उपयोग विशेष तौर से मूल्य संवर्धन आधारित उद्योगों के लिए किया जाता है जिससे हम अपने उत्पाद के अच्छे दाम पा सकते हैं। इस उद्देश्य से माल्ट जौ की विभिन्न प्रजातियाँ विकसित की गई हैं; जैसे–डीडब्ल्यूआरयूबी 52, आरडी 2668, डी डब्ल्यूआरबी 73 और डीडब्ल्यूआरयूबी 64। इन प्रजातियों को अनुबंध खेती (कान्ट्रैक्ट फार्मिंग) में एक बड़े पैमाने पर प्रयोग में ला जा रहा है जिससे राजस्थान, हरियाणा, पंजाब एवं उत्तराखण्ड के बहुत से किसान लाभान्वित हो रहे हैं।

2. **प्रति इकाई अधिक आर्थिक लाभ :** लगातार बढ़ रही कृषि आदानों की कीमतों और कृषि उत्पादों का तदनुरुप बाजार मूल्य में वृद्धि न होने के कारण जौ की उत्पादन लागत व लाभ के अनुपात में निरंतर कमी आ रही है। एक सर्वेक्षण के अनुसार 40 प्रतिशत किसान कृषि कार्य छोड़ना चाहते हैं यदि उन्हें जीविकोपार्जन के लिए कोई अन्य रोजगार मिले। ऐसी स्थिति में किसानों के हितों को सर्वोपरि मानते हुए नई तकनीकों का विकास करना आवश्यक है जो प्रति एकड़ शुद्ध आय बढ़ा सके। केवल जौ की उत्पादकता बढ़ाना की काफी नहीं है बल्कि हमारा लक्ष्य किसानों की शुद्ध आय में पर्याप्त बढ़ोत्तरी भी करना है। इसके लिए जीरो टिलेज, मेंड़ पर बुआई, रोटरी टिलेज से बुआई, जैविक खेती, समेकित नाशीजीव प्रबंधन, समेकित पोषण प्रबंधन, जल संरक्षाण तकनीक आदि पर अधिक जोर दिया जाना चाहिए ताकि जौ की खेती में लागत कम की जा सके, साथ ही बाजार व्यवस्था को भी सुदृढ़ करना होगी जिससे किसानों को जौ की उपयुक्त कीमत मिल सके और किसानों की आय बढ़ सके। इसके लिए कंपनियों को भी किसानों के साथ अनुबंध खेती पर जोर देना होगा।

3. **फसल–प्रणाली का विविधीकरण :** फसल विविधीकरण द्वारा किसान अनेक समस्याओं जैसे खरपतवार, कीड़े एवं बिमारियों का प्रबंधन बिना किसी अतिरिक्त लागत के कर सकता है, साथ ही दो धान्य फसलों के बीच में कम अवधि की दलहन फसल का समावेश कर अपनी आमदनी भी बढ़ा सकता है जिससे मृदा की उर्वरा शक्ति सन्तुलित बनी रहेगी। कृषि आवकों का समुचित प्रयोग करके प्राकृतिक संसाधनों जैस मिट्टी एंव पानी का संरक्षण भी किया जा सकता है।

4. **पोषक तत्वों का प्रबंधन :** आधुनिक कृषि में सघन फसल उत्पादन पद्धति ने मृदा के स्वास्थ्य को काफी हानि पहुचाई है। अतः यह आवश्यक है कि प्रत्येक गांव की मृदा का परीक्षण करके

मृदा स्वास्थ्य एटलस बनाया जाए जो यह दर्शाये कि किस गांव के किस खेत की मिट्टी कैसी है। उस खेत में कौन–कौन से पोषक तत्वों की कमी है तथा उसके लिए क्या सुझाव है। इस आधर पर किसान उर्वरकों का सही मात्रा में प्रयोग कर पोषक तत्वों का प्रभावी प्रबंधन कर सकता है इससे लगातार कम हो रही भूमि में कार्बन की मात्रा में सुधार लाया जा सकता है। संरक्षण एवं टिकाऊ खेती को बढ़ावा देकर इस कार्य को अधिक बेहतर ढंग से करने की आवश्यकता है। गोबर की खाद, हरी खाद एवं वर्मीकमोस्ट के प्रयोग द्वारा मृदा के स्वास्थ्य का पोषण तथा गुणवत्ता का सुधार आज की सबसे बड़ी आवश्यकता है।

5. **विस्तार सेवाओं का सुदृढ़ीकरण :** बदलते परिवेश में जौ से जुड़ी कृषि विस्तार सेवाओं का सुदृढ़ीकरण एवं नवीनीकरण अति आवश्यक है जिससे किसानों को वर्तमान तकनीकी ज्ञान से यथा शीघ्र अवगत कराया जा सके। इसके लिए निम्नांकित सुझाव दिये जा सकते है;

- अग्रिम पंक्ति प्रदर्शन का बड़े पैमाने पर आयोजन द्वारा नई किस्में का प्रसार।
- जौ में दक्ष तंत्र का विकास एवं किसानों के बीच इसकी उपयोगिता का प्रदर्शन।
- किसानों को जौ की फसल से संबंधित आंकड़े रखना तथा उसमें यथोचित संशोधन करते रहना।
- संचार माध्यमों का अधिकाधिक प्रयोग।
- किसानों के भ्रमण तथा कार्यशाला का आयोजन।
- अनुबंध खेती के लाभदायक पहलुओं से कृषक समुदाय को अवगत कराना।
- संसाधन संरक्षण तकनीक आधारित प्रक्षेत्र प्रदर्शनों को बढ़ावा देना।
- मीनी किट के माध्यम से नई किस्मों के बीजों को अधिक से अधिक किसानों को पहुंचाना।
- जौ की गुणवत्ता एवं इसके विपणन पर किसानों को प्रशिक्षण कार्यक्रमों के माध्यम से मार्ग दर्शन करना।

गेहूँ की फसल में समेकित कीट प्रबंधनः आज की आवश्यकता

ih lh ehuk

Hkkjrh; [kk| fuxe] ftyk dk;kZy;] vyoj] jktLFkku

भारत शुरू से ही कृषि प्रधान देश रहा है और गेहूँ यहां की प्रमुख खाद्य फसल है जो देश के अधिकांश प्रदेशों में उगाई जाती है। भारत में वर्ष 2012–13 में 93.46 मिलियन टन उत्पादन हुआ। कीटो, रोगों, एवं सूत्रकृमियों के कारण गेहूँ में 5–10 प्रतिशत उपज की हानि हो जाती है। जिससे दाना एवं बीज की गुणवत्ता भी खराब हो जाती है। गेहूँ की फसल में प्रमुख माहू, दीमक, क्रतन कीट, सैनिक कीट, तना मक्खी एवं बाली का निमाटोड आदि लगने की सम्भावना रहती है। खाद्यान्न की बढ़ती मांग एवं उन्नत बीज व उत्पादन तकनीकी ने भारत को इस क्षेत्र में आत्मनिर्भर बनाया है। उन्नत तकनीक में विभिन दवाईयों के प्रयोग व अधिक खाद की आवश्यकता के कारण उत्पादन की लागत लगातार बढ़ रही है। आज इस विकास की होड़ में ज्यादा से ज्यादा उत्पादन लेने की प्रतिस्पर्धा सी लग गई है, जिससे रसायनों का अन्धाधुन्ध प्रयोग द्रुत गति से बढ़ता जा रहा है। इसके दुष्परिणाम भी अब परिलक्षित होने लगे हैं। इन रसायनों के कारण न सिफ वातावरण एवं भूमिगत जल दूषित हो रहा है वरन कीटों में इन दवाईयों के प्रति अवरोधिता भी बढ़ गई एवं कीटनाशी अप्रभावी सिद्ध हो रही है। रसायन के अधिक प्रयोग से मित्र कीट भी इन रसायनों की भेंट चढ़ रहे हैं। इस प्रकार इनका हानिकारक प्रभाव बढ़ता जा रहा है। खाद्य पदार्थों में कीटनाशियों के अवशेष भी पाये जाने लगे हैं, जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य एवं पशुओं में विभिन्न प्रकार की बीमारियां जैसे अंगों का विकृत होना पाया जाने लगा है। अतः जरूरी है कि कीट नियन्त्रक की ऐसी तकनीकी अपनायी जाये जिससे अधिक उत्पादन के साथ–साथ लागत कम हो एवं मानव स्वास्थ्य के लिए सुरक्षित भी हो।

समेकित कीट प्रबंधक में कम से कम रसायनों का प्रयोग, शस्य क्रियाओं में सुधार तथा कीटों की निगरानी रखते हुए कीटों का उचित समय पर नियन्त्रण किया जाता है। सुनियोजित एवं विवेकपूर्ण फसल प्रबंधन योजनाएँ ही फसलों पर लगने वाले कीटों से सुरक्षित कर अधिक उपज प्राप्त करने में मुख्य भूमिका निभाती हैं। आज गेहूँ की उपज बढ़ाने में बाधाएं आ रही हैं इसलिए कीट सुरक्षा का विशेष महत्व है। अतः इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए गेहूँ में लगने वाले कीटों को एक सीमा तक नियन्त्रण कर दिया जाय तो गेहूँ की उत्पादकता को बढ़ाते हुए गेहूँ के उत्पादन में काफी सुधार लाया जा सकता है।

xsgw¡ ds izeq[k gkfudkjd dhV

1- nhed

यह गेहूँ का प्रमुख हानिकारक कीट है जो असिंचित व हल्की भूमि में अधिक नुकसान पहुँचाती है। इसके प्रकोप से 25 प्रतिशत तक अंकुरित पौधे नष्ट हो जाते हैं एवं इसका प्रकोप फसल की

सम्पूर्ण अवस्थाओं में पाया जाता है दीमक हल्के भूरे रंग की होती है तथा यह जमीन में सुरंग बनाकर रहती है और पौधों की जड़ों को काटकर क्षतिग्रस्त कर देती है। इसके प्रकोपित पौधे धीरे–धीरे सूख जाते हैं और ऊपर खींचने पर आसानी से निकल जाते हैं। इसका प्रकोप टूकड़ों में होता है, जिससे आसानी से पहचाना जाता है।

izcèku

1. बीज को बुआई से पूर्व इमिडाक्लोप्रिड 70 डब्ल्यू.एस. 0.1 प्रतिशत से उपचारित कर बोना चाहिए।
2. खेत में हमेशा भलीपूर्वक गोबर की अच्छी सड़ी हुई खाद का उपयोग करें।
3. प्रभावित खेत में सिंचाई समय–समय पर करते रहें।
4. 1 कि.ग्रा. मेटारिजयम तथा 1 कि.ग्रा. विवेरिया को 25 कि.ग्रा. गोबर की सड़ी हुई खाद में अच्छी तरह मिलाकर छाया में 10 दिन के लिए रख दें, प्रभावित खेत में तदोपरान्त प्रति एकड़ बुआई से पूर्व इसका प्रयोग करें।
5. दीमक का अधिक प्रकोप होने पर क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी. की 3–4 लीटर मात्रा को बालू/रेत में मिलाकर प्रति हैक्टर प्रयोग करें।

2- iÙkh dk ekg

यह कीट भारत के सभी क्षेत्रों में पाया जाता है तथा यह पंखहीन एवं पंखवाला दोनों अवस्था में होता है। इस कीट का प्रकोप प्रायः जनवरी से शुरू होकर मार्च तक रहता है। यह फसल की पत्तियों का रस चूसकर नुकसान पहुंचाता है तथा इसके मल से पत्तियों पर चिपचिपाहट एवं काली रंग की फफूंद पैदा हो जाती है। जिससे फसल का रंग खराब हो जाता है एवं पौधों की वृद्धि प्रभावित होती है।

izcèku

1. फसल की बुआई समय से करने से इस कीट का प्रकोप कम होता है।
2. गेहूँ की फसल में नत्रजन उर्वरकों का अधिक प्रयोग न करें।
3. कीट के शुरू के आक्रमण ग्रसित प्ररोहों को तोड़कर नष्ट कर दें।
4. माहू का प्रकोप होने पर पीले चिपचिपे ट्रैप का प्रयोग करें जिससे माहू ट्रैप पर चिपक कर मर जाये।

5. बी.टी. 1 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करना चाहिए।

6. परभक्षी कॉक्सीनेलिड्स अथवा सिरफिड अथवा क्राइसोपरला कॉर्निया का संरक्षण कर 50000–100000 अण्डे या सूण्डी प्रति हैक्टर की दर से छोड़ें।

7. नीम का अर्क 5 प्रतिशत या 1.25 लीटर नीम का तेल 100 लीटर पानी में मिलाकर छिडकें।

8. इण्डोपथोरा व वर्टिसिलयम लेकानाई इन्टोमोफ्था जनित फंजाई (रोग कारक कवक) माहू का प्रकोप होने पर छिड़काव करें।

9. आवश्यकता होने पर मैलाथियान 50 ई. सी. का या डाइमेथोएट 30 ई.सी. या मेटासिस्टॉक्स 25 ई.सी. 1.25 से 2.0 मि.ली. प्रति लीटर की दर से छिडकाव करें।

3- l fud dhV ¼vkeh oe½

प्रोढ कीट भूरा रंग का होता है। मादा कीट पर्णछेद एवं तने की मध्य में अण्डे देती है। नवजात सुण्डी बहुत गतिशील होती है जो शुरू में मटमैली सफेद व बाद में हरी हो जाती है। इस कीट की सूण्डी गेहूँ की फसल को नुकसान पहुंचाती है तथा यह सूण्डी मार्च के महिने में सर्वाधिक पाई जाती है। अण्डों से निकली सुण्डी हवा के झोंकों से एक पौधे से दूसरे पौधों तक पहुंच जाती है। प्रथम अवस्था में ये पौधे के मध्य वाली कोमल पत्तियों को खाती है। जैसे–जैसे सूण्डी बढ़ती है तो उसके साथ–साथ पुरानी पत्तियों को खाने लगती है और पत्तियों में मात्र मुख्य शिरा बचता है। इस प्रकार पौधा कंकाल का रूप ले लेता है। बड़ी सूण्डियां बालियों को सींकूर सहित खाती है तथा साथ ही अपरिपक्व दानों को भी खाती है। अतः इसे बाली खाने वाला कीट भी कहा जाता है।

i|cèku

1. फसल की बुआई से पूर्व खेत में खड़े हुए पूर्व के अवशिष्टों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए।

2. खेत एवं आस–पास खड़े खरपतवार को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।

3. कीट का प्रकोप होने पर डाइमेथोएट 30 ई.सी. की 1.5 से 1.75 मिली मात्रा प्रति लीटर पानी में या क्विनॉलफॉस 25 ई.सी. 1 लीटर या डायक्लोरफॉस 76 प्रतिशत 500 मि.ली. मात्रा को 700 लीटर पानी में घोलकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।

4. ijkg eD[kh ;k ruk eD[kh

इस कीट का प्रोढ घरेलू मक्खी जैसा होता है तथा मेगट गुलाबी सफेद होता है। यह कीट नवम्बर से मार्च तक पाया जाता है लेकिन नवम्बर–दिसम्बर में अधिक सक्रिय रहता है। मादा कीट नर कीट से बढ़ी होती है। मादा मक्खी तने के निचले भाग में या पत्तियों के नीचे अण्डे देती है। अण्डे से मेगट निकलकर तने में छेद करके अन्दर प्रवेश कर जाते हैं और अन्दर से तने को खाती रहती है। तने के अन्दर सुरंग बनाकर मृत केन्द्र डेड हर्ट का निर्माण करती है जिसके कारण पौधा पीला पड़ जाता है और अन्त में सूख जाता है। पूर्ण विकसित मैगेट तने के निचले भाग में प्यूपा में परिवर्तित हो जाता है तथा 6–7 दिन बाद व्यस्क कीट बन जाता है।

izcU/ku

1. एक ही खेत में लगातार गेहूँ की फसल न बोयें। खेत में फसल–चक्र अपनायें और फसल चक्र में चना, अलसी या गोभी वर्गीय फसल अवश्य लगायें।
2. गेहूँ की फसल की बुआई 15 नवम्बर के बाद करें।
3. खेत में पानी की मात्रा पर्याप्त होने पर इस कीट का प्रकोप कम होता है।
4. कीट का प्रकोप होने पर साइपरमैथ्रिन 25 प्रतिशत की 350 मि.ली. या मोनोक्रोटोफॉस 36 प्रतिशत एस.एल. 650 मि.ली. मात्रा का पानी में घोल बनाकर प्रति हैक्टर की दर से छिड़काव करें।
5. कार्बरिल 10 प्रतिशत डी.पी. 25 कि.ग्रा. प्रति हैक्टर की दर से बुरकाव करें।

5- drlu dhV

इस कीट का प्रकोप देश के प्रत्येक भाग में होता है। कीट का व्यस्क मटमैला भूरा तथा सूण्डी हरे या काले भूरे रंग की होती है। इस कीट की सूण्डियां खेत में एक साथ आक्रमण करके सम्पूर्ण पत्तियों को नष्ट कर देती हैं। मादा कीट रात के वातावरण में निकलकर पत्तियों पर अण्डे देती है। इसकी सूण्डी जमीन में गेहूँ के पौधे के पास मिलती है तथा जमीन की सतह से पौधे को काट देती है। यह कीट गेहूँ के अलावा सोलेनियसी परिवार के पौधे तथा कपास एवं दलहनी फसलों पर भी आक्रमण करता है।

i:cèku

1. खेतों के पास प्रकाश प्रपंच/फेरोमोन ट्रैप 20 प्रति. हैक्टर के हिसाब से लगाकार प्रोढ कीटों को आकर्षित करके नष्ट किया जा सकता है, जिससे इनकी संख्या को कम किया जा सकता है।
2. खेतों के बीच में जगह–जगह घास फूस के छोटे–छोटे ढेर शाम को लगा देने चाहिए, रात्रि में जब सूण्डियां खाने निकलती एवं बाद में इन्हीं में छिपेंगी जिन्हें घास–फूस को हटाने पर आसानी से नष्ट किया जा सकता है।
3. कीट का प्रकोप बढ़ने पर डाईमेथोएट 30 ई.सी. की 1.5 से 2.0 मिली प्रति लीटर पानी में या क्लोरोपाइरीफॉस 20 ई.सी. 1 लीटर प्रति हैक्टर या नीम का तेल 3 प्रतिशत की दर से छिड़काव करें।

6- xg dh ckyh dk dkfdy fuekVkM

यह रोग एंग्वीना ट्रीटसी नामक निमाटोड के द्वारा होता है जो गेहूँ के बीज के साथ रहकर जीवित रहता है। उचित वातावरण मिलने पर पौधों को रोगग्रस्त कर देता है एवं स्वस्थ पौधों को भी प्रभावित करता है। इस रोग के कारण गेहूँ के उत्पादन में 10 प्रतिशत कमी आ जाती है।

jkx d y{k.k

संक्रमित पौधे की पत्तियां ऐंठी तथा संकुचित हो जाती है तथा बालियों का आकार भी टेढा–मेढा हो जाता है। रोग–ग्रस्त पौधों की बढ़कर स्वस्थ पौधों की तुलना में कम होती है एवं रोगी पौधों की बालियां ज्यादा समय तक हरी बनी रहती है, अतः देरी से पकती हैं। बालियों में दानों की जगह भूरे/काले रंग की कठोर संरचना बन जाती है।

i:cèku

1. एक ही खेत में 3 वर्षों तक गेहूँ न बोयें एवं फसल–चक्र अपनायें।
2. स्वस्थ एवं कोकलमुक्त या प्रमाणित बीज का उपयोग करें।
3. बीज को 10 प्रतिशत नमक के घोल में डूबाकर ऊपर तैरने वाले बीजों को छानकर जला दें तथा नीचे के तल में बैठे बीज को 3–4 बार स्वच्छ पानी में धोकर उसे छाया में सुखाकर तथा 0.25 प्रतिशत थाइरम से उपचारित करके बुआई करें।

संसाधन संरक्षण प्रौद्योगिकियाँ अपनाकर अधिक उत्पादन व लाभ लें

jktUn flg Nkdj[1], vuqt dekj[1], vkj d 'kek[1], j.k/khj flg[1] ,o lqj'k pUn jk.kk[2]

[1]xgq vuqla/kku funs'kky;] djuky] gfj;k.kk

[2]ÒkjRkh; Ñf"k vuqla/kku laLFkku {ks=h; LVs'ku] djuky] gfj;k.kk

बढ़ती हुई जनसंख्या को देखते हुए हमें फसलों का उत्पादन बढ़ाना होगा। उत्पादन में यह वृद्धि हमें उत्पादकता को बढ़ाकर ही करनी होगी क्योंकि फसल उगाने योग्य भूमि को और अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता तथा इसके बढ़ती आबादी के कारण कम होने के आसार अधिक है। उत्पादकता को बढ़ाने के लिए हमें उन्नत संसाधन संरक्षण विधियों को अपनाना होगा जो हमारी भूमि और पानी के संरक्षण में सहायक भी है। कुछ उन्नत संसाधन संरक्षण विधियाँ इस प्रकार है।

Ykstj yS.M ysofyax

यह अन्य संसाधन संरक्षण तकनीकें अपनाने से पहले प्रयोग में लाई जाने वाली अति आवश्यक तकनीक है। इस तकनीक से खेत को समतल किया जाता है ताकि पानी और डाले गए उर्वरकों को हर हिस्से में बराबर पहुँचाया जा सके। इसमें लेजर चालित उपकरण प्रयोग में लाया जाता है जो यह सुनिश्चित करता है कि खेत पूरी तरह समतल हो। इस तकनीक में खेत में ऊँचे हिस्सों (भागों) से मिट्टी उठाकर निचले हिस्सों में डाली जाती है। खेत पूरी तरह समतल होने के कारण लगभग 20 प्रतिशत पानी की बचत होती है। कम पानी उपयोग होने के कारण उर्वरक विशेषतः नत्रजन उपयोग क्षमता भी बढ़ जाती है। खेत में कम मेंड़ों और नालियों की आवश्यकता होने के कारण फसल उगाने के लिए 3–4 प्रतिशत अधिक क्षेत्र उपलब्ध हो जाता है। इन सभी कारणों से कम लागत आने पर भी लगभग 10 प्रतिशत तक पैदावार बढ़ जाती है। फसलों के मेंड़ पर उगाये जाने को बढ़ावा देने के लिए इस तकनीक को अपनाना और भी अधिक आवश्यक है तथा कम पानी वाले क्षेत्रों में यह बहुत लाभकारी सिद्ध हो सकती है। इस मशीन की कीमत लगभग 3.5 लाख रूपये है लेकिन अधिक कीमत होने की वजह से हर किसान इसे नहीं खरीद सकता। अतः किराये पर लेकर इसका उपयोग कर सकते हैं।

thjks fVyst

जीरो टिलेज गेहूँ बुआई की एक बहुपयोगी और लाभकारी तकनीक है। जीरो टिलेज से बुआई के लिए विशेष रूप से डिजाईन की गई बीज एवं उर्वरक डालने वाली मशीन (जीरो टिल ड्रिल),

जिसके फाले चाकूनुमा होते हैं, का प्रयोग किया जाता है। इस पद्धति से बुआई करने पर खेत की तैयारी में लगने वाले समय की बचत होती है तथा यदि आवश्यकता हो तो बुआई 10–15 दिन पहले भी की जा सकती है। इस विधि द्वारा गेहूँ की समय व देर से, दोनों ही प्रकार की बुआई की जाती है। अच्छी पैदावार के लिए इस तकनीक में भी पारंपरिक विधि के बराबर ही बीज व खाद का प्रयोग करना चाहिए। इस तकनीक के अंगीकरण से किसान

1200–1500 रूपये प्रति एकड़ बचा सकते हैं। जीरो टिलेज में पहली सिंचाई के बाद गेहूँ की फसल पीली नहीं पड़ती जबकि पारंपरिक विधि में पीली पड़ती है। जीरो टिलेज से बुआई किए गए खेतों में मंडूसी, करनाल बंट, पाउडरी मिल्ड्यू (चूर्णिल आसिता) व दीमक का प्रकोप भी कम होता है।

- इस तकनीक से गेहूँ की बुआई में समय, पानी, मजदूरी व ईंधन की बचत के साथ–साथ मशीनरी (ट्रैक्टर, हैरो व ड्रिल इत्यादि) की घिसाई भी कम होती है।
- जुताई करके बोई गई गेहूँ के बराबर या थोड़ी अधिक उपज प्राप्त होती है।
- इस विधि से बोई गई गेहूँ गिरती भी कम है।
- इस मशीन से एक घंटे में 2 से 2.5 एकड़ खेत की बुआई की जा सकती है।
- इस मशीन की कीमत लगगभ 40,000 रूपये है। कई राज्य सरकारें इस मशीन की खरीद पर 25–50 प्रतिशत तक अनुदान भी दे रही हैं।
- बीज दर 100 किलो ग्राम/है. रखें। बीज को उपचारित अवश्य करें ताकि जो दाने ऊपर रह जाएं उन्हें पक्षी न खाएं तथा करनाल बंट जैसी बीज से उपज होने वाली बिमारियों की भी रोकथाम हो सकें।
- 150 कि.ग्रा. नत्रजन, 60 कि.ग्रा. फास्फोरस तथा 40 कि.ग्रा. पोटाश प्रति हैक्टर की दर से उर्वरक का प्रयोग करें। नत्रजन की एक तिहाई या इससे भी कम मात्रा बुआई के समय तथा शेष नत्रजन को दो भागों में बांट कर पहली तथा दूसरी सिंचाई पर डालें।
- जीरो टिलेज में बुआई के पश्चात सुहागा या पाटा न लगाएं।

eM+ ij cqvkbZ ¼csM IykfVax½

इस तकनीक द्वारा गेहूँ की बुआई के लिए खेत पारंपरिक तरीके से तैयार किया जाता है और फिर मेंड़ बना कर गेहूँ की बुआई की जाती है। इस पद्धति में बेड प्लांटर नामक एक विशेष प्रकार की मशीन का प्रयोग एक ही बार में मेंड़ व नाली बनाने एवं बुआई के लिए किया जाता है। यह मशीन प्रति मेंड़ दो या तीन

पंक्ति में बुआई के साथ–साथ खाद भी डालती है। मेंड़ों के बीच की नालियों से सिंचाई की जाती है। इस तकनीक में यदि बुआई के समय कम नमी हो या तेज हवा चल रही हो तो अच्छे जमाव के लिए बोने के तुरन्त बाद या तीन चार दिन बाद पहली हल्की सिंचाई लगाएं। शेष सिंचाई आवश्यकता अनुसार करें। बरसात में जल निकासी का काम भी इन्हीं नालियों से होता है। इस विधि में गन्ने की तथा कुछ सब्जी वाली फसलों को अंतः फसल के रूप में भी लिया जा सकता है। इस विधि में गन्ना अथवा सब्जी वाली फसल को नालियों में तथा गेहूँ को मेंड़ पर लगाया जाता है।

- इस पद्धति से बुआई के लिए मिट्टी का भुरभुरा होना आवश्यक है तथा अच्छे जमाव के लिए पर्याप्त नमी होनी चाहिए।
- इस पद्धति में लगभग 25 प्रतिशत बीज की बचत की जा सकती है अर्थात् 30–35 किलोग्राम बीज एक एकड़ के लिए पर्याप्त है।
- यह मशीन लगभग 70 सें.मी. की मेंड़ बनाती है जिस पर 2 या 3 पंक्तियों में बुआई की जाती है। अच्छे जमाव के लिए बीज की गहराई 4–5 सें.मी. होनी चाहिए।
- मेंड़ उत्तर–दक्षिण दिशा में होने चाहिए ताकि हर एक पौधे को सूर्य की रोशनी बराबर मिल सके।
- इस मशीन से एक एकड़ की बुआई में लगभग एक घंटे का समय लगता है।
- इस मशीन की कीमत लगभग 45000 रूपये है।
- इस पद्धति से बोई गई गेहूँ में 25–40 प्रतिशत पानी की बचत होती है। यदि खेत में पर्याप्त नमी नहीं हो तो अच्छे जमाव के लिए पहली सिंचाई बुआई के 2–3 दिन के अन्दर दे देनी चाहिए।
- गेहूँ के तुरंत बाद पुरानी मेंड़ों को पुनः प्रयोग करके खरीफ फसलों में मूंग, मक्का, सोयाबीन, अरहर, कपास आदि की फसलें उगाई जा सकती हैं। इस विधि से दलहन एवं तिलहन की अधिक पैदावार मिलती है।
- धान–गेहूँ फसल चक्र के अतिरिक्त शेष फसल चक्रों में मेंड़ों को बनाये रखकर जीरो टिलेज की तरह ही अगली फसल की बुआई की जा सकती है।

jksVjh fVyst

रोटरी टिलेज तकनीक भी संसाधन संरक्षण का एक उत्तम माध्यम है। इस तकनीक द्वारा गेहूँ की बुआई एक विशेष प्रकार की मशीन 'रोटरी टिल ड्रिल' से की जाती है। यह मशीन एक बार में ही खेत की जुताई के साथ–साथ लाईनों में खाद व बीज डाल कर पाटा भी लगाती है। इससे समय, श्रम और डीजल की बचत होती है। साथ ही संसाधन संरक्षण की सभी तकनीकों में गेहूँ की सर्वाधिक उपज भी इसी तकनीक से मिलती है। इस तकनीक से खेत की तैयारी की लागत में लगभग

1000 रूपये प्रति एकड़ की बचत हो जाती है। इस मशीन से एक बार में 9–10 पंक्तियों में बुआई की जाती है तथा खाद व बीज पारंपरिक विधि की तरह उपयोग किए जाते हैं।

- इस मशीन को चलाने के लिए 45 अश्व शक्ति (हॉर्स पावर) या उससे अधिक के ट्रैक्टर की आवश्यकता होती है। इस मशीन से एक घंटे में एक एकड़ की बुआई हो जाती है।
- इस मशीन की कीमत लगभग 75,000 रूपये है। कई राज्यों की सरकारें इन मशीनों की खरीद पर 25–50 प्रतिशत तक अनुदान (सब्सिडी) भी दे रही हैं।
- इसका प्रयोग धान की रोपाई के लिए पाड़े काटने/मचाई/कद्दू करने के लिए भी किया जा सकता है।
- यह मशीन ढैंचे की हरी खाद को जमीन में मिलाने के लिए भी काफी प्रभावी है।

Qly vo'k"k izcU/ku dh e'khu

पादप पोषक तत्वों की उपलब्धता के लिए फसल अवशेष प्रमुख स्त्रोत हैं। भारत में प्रति वर्ष लगभग 400 मिलियन टन फसल अवशेष उत्पादित होते हैं। जिन क्षेत्रों में कम्बाईन हारवेस्टर प्रयोग की जाती है वहां फसल अवशेष खेत में ही जला दिये जाते हैं। जिनको पोषक तत्वों की प्राप्ति हेतू प्रयोग किया जा सकता है। भूमि से कुल उपयोग का नाइट्रोजन व फास्फोरस, 50 प्रतिशत गन्धक व 75 प्रतिशत तक पोटाश, लगभग 25 प्रतिशत खाद्य फसलें फसल अवशेष में धारण किये रहती हैं। धान–गेहूँ फसल चक्र में धान में 7 टन प्रति है. व गेहूँ की 4 टन प्रति है. उपज प्राप्त करने हेतू यह दोनों फसलें भूमि से 300 कि.ग्रा. नत्रजन, 30 कि.ग्रा. फास्फोरस व 300 कि.ग्रा. पोटाश प्रति है. लेती हैं। भूसे या पुआल का निस्सारण, मुख्यतः धान में, किसानों के लिए एक मुख्य समस्या है। धान कटाई व गेहूँ बुआई के बीच में किसानो को बहुत कम समय उपलब्ध होता है जिसमें पुआल को सड़ाना सम्भव नहीं हो पाता है। किसान गेहूँ की शीघ्र बुआई करने हेतू खेत को खाली करने के लिए पुआल को जला देते है जिससे वातावरण में प्रदूषण फैलता है, पोषक तत्वों व भूमि की उर्वराशक्ति का ह्रास होता है, महत्वपूर्ण मृदा कार्बनिक पदार्थों की हानि होती है व लाभदायक जीवाणुओं की भूमि में कमी होती है। प्रयास किये जा रहे है जिससे फसल अवशेषों को भूमि सतह पर धारण करके अवशेषों में ही अगली फसल का बीज बोया जा सके।

फसल अवशेषों के भूमि सतह पर धारण करने के बहुत लाभ हैं। यह भूमि जल का उचित संरक्षण, खरपतवारों का काफी हद तक समाधान, भूमि तापक्रम को उचित स्तर बनाये रखने, लाभकारी जीवों की संख्या में वृद्धि, भूमि में कार्बनिक पदार्थ की करने में भी बढ़ोत्तरी करने में भी सहायक हैं। इससे भूमि की उर्वरता व पैदावार स्थायित्व में वृद्धि होती है। फसल अवशेषों में बुआई हेतू द्वितीय पीढ़ी के यंत्रों को विकसित किया जा रहा है जो निम्न हैं।

gSih lhMj@Vckl lhMj

यह मशीन धान के खेतों में फसल अवशेषों के प्रबन्धन के लिए विकसित की गई है। यह मशीन भी रोटरी प्रणाली पर आधारित है। इस मशीन के आगे लगे फलेल 1500 आर.पी.एम. पर घूमते हैं तथा धान के पुआल/पराली को काटकर और उनको उठाकर पीछे बुआई किये जा चुके क्षेत्र पर लाईनों के बीच फेंकते हैं तथा पीछे लगी जीरो ड्रील के माध्यम से बीज व खाद डाली जाती है। उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में किसान धान के फसल अवशेषों को जलाते हैं जिससे वायुमंडल प्रदूषित तो होता ही है साथ ही ऊपरी सतह की नमी भी खत्म हो जाती है। जलाने से हम भूमि एवं पानी संरक्षण में बहुत ही उपयोगी एक कार्बर्निक (ऑर्गेनिक) स्रोत को भी नष्ट कर देते हैं। इसकी आवश्यकता को देखते हुए यह मशीन बनाई गई है। यह मशीन करीब एक घंटे में एक एकड़ खेत की बुआई कर देती है। इस मशीन की कीमत लगभग 1,25,000 रूपये है।

jkSVjh fMLd fMªy

यह मशीन भी बिखरे पड़े फसल अवशेषों में ही सीधी बुआई के लिए बनाई गई है। धान की फसल के अलावा गन्ना, कपास, बाजरा, अरहर आदि की फसल वाले खेतों में इस मशीन द्वारा बिना जुताई किए गेहूँ की सीधी बुआई संभव है। इस मशीन में लगे तवे/डिस्क फसल अवशेषों को काटते हुए बुआई कर देते हैं। अनुसंधानों से यह साबित हो चुका है कि धान के 6 से 8 टन प्रति हैक्टर के फसल अवशेषों में भी गेहूँ की सफलतापूर्वक बुआई की जा सकती है तथा पैदावार भी अच्छी आती है। इस विधि से गेहूँ के अवशेषों में भी अन्य फसलें जैसे धान, मूंग आदि की सीधी बुआई संभव है। इस विधि से बोई गई गेहूँ के भी गिरने की संभावना कम रहती है। जमीन में कार्बनिक पदार्थ की मात्रा भी बढ़ जाती है। फसलों के अवशेषों को भूमि की सतह पर रखने से नमी तो बनी ही रहती है साथ ही खरपतवार एवं दीमक की समस्या भी कम होती है ।

jkSVjh fMLd fMªy ls xUuk] dikl o vjgj dh dVkbZ ds ckn rqjUr cqvkbZ

रोटरी डिस्क ड्रिल बिखरे पड़े फसल अवशेष या गन्ना, कपास व अरहर की कटाई के तुरन्त उपरान्त सीधी बुआई करने में सक्षम है। इस मशीन में लगे तवे/डिस्क फसल अवशेषों को काटते हुए बुआई कर देती है। इस मशीन से गेहूँ के अवशेषों में भी मूंग व लोबिया की सीधी बुआई संभव है। इस विधी में बुआई करने पर जो अवशेष सतह पर रहते हैं वे भूमि में नमी बनाए रखने तथा खरपवारों को दबाने में सहायक रहते है।

dikl e xg dh fjy cvkbZ

धान–गेहूँ फसल चक्र के बाद, कपास–गेहूँ एक मुख्य फसल प्रणाली है जो लगभग 100 लाख एकड़ क्षेत्रफल मे उगाई जाती है। कपास–गेहूँ फसल चक्र में गेहूँ की बुआई देरी से होती है। तथा देरी का कारण लम्बी अवधी की कपास की किस्मों का देर से पकना गेहूँ के लिए खेत की तैयारी में विलम्ब का कारण है। अच्छी पैदावार के लिए गेहूँ की बीजाई, नवम्बर के पहले पखवाड़े में कर देनी चाहिए अन्यथा पैदावार 12–15 कि. ग्रा./एकड़/दिन से कम हो जाती है। यदि हम गेहूँ की अच्छी पैदावार लेने के लिए कपास की फसल की कटाई जल्दी करते हैं तो कपास की पैदावार कम मिलती है। पिछले कुछ वर्षों के प्रयोगों से एक नई सस्य तकनीक जिसमें कपास की खड़ी फसल में गेहूँ की बुआई करते हैं रिले बुआई कहा जाता है। यह तकनीक कपास–गेहूँ फसल चक्र की अच्छी पैदावार लेने के लिए सहायक पाई गई है। जीरो टिलेज में गेहूँ की बुआई करने से किसान जुताई से भी छुटकारा पा सकते हैं।

खड़ी कपास की फसल में गेहूँ का बीज 50–55 कि. ग्रा./एकड़ छिड़क कर हल्का पानी दें। या पानी देकर जब खेत में पानी लगभग न के बराबर खड़ा हो तो अंकुरण किये गए गेहूँ के बीज का छिड़काव करें। इस विधि से गेहूँ का जमाव जल्दी तथा अच्छा होगा। बीज को गोबर के घोल से उपचारित करके भी छिड़ककर बोया जा सकता है। खड़ी कपास में, गेहूँ की बुआई 10–15 नवम्बर के आसपास करें। गेहूँ की बुआई के 30–40 दिन बाद जब कपास डिण्डे पक जाती है तथा चुग ली जाती है तब कपास के पौधे काटकर बाहर निकाल दिए जाते हैं। पारम्परिक विधि मे कपास के पौधे काटने के बाद जुताई कर बुआई की जाती है। देरी से बुआई करने से पैदावार कम हो जाती है।

fjy&dikl&xg i)fr d ykHk

- गेहूँ की 2– 4 कुंतल/एकड़ तथा कपास की 50–60 कि. ग्रा./एकड़ अधिक पैदावार जिससे कपास–गेहूँ प्रणाली की पैदावार मे भी बढ़ोत्तरी होती है।
- जुताई की बचत
- शुद्ध लाभ मे बढ़ोत्तरी होती है।

धान की सीधी बुआई के लिए उन्नत विधियाँ

vkj ,l Nkdj] vkj d 'kek] vu|t d|ekj ,o j.k/khj fl|g

xg| vu|l/kku fun'kky;] djuky] gfj;k.kk

धान भारत की सबसे महत्त्वपूर्ण खाद्यान्न फसल है तथा यह संसार का दूसरा सबसे बड़ा धान उगाने वाला देश है। धान हमारे देश में लगभग 430 लाख हैक्टर क्षेत्र में उगाया जाता है। खाद्यान्न सुरक्षा की दृष्टि से यह एक महत्वपूर्ण फसल है तथा हमें अपनी निरन्तर बढ़ती हुई जनसंख्या का पेट भरने के लिए निरन्तर इसके उत्पादन व उत्पादकता को बढ़ाना होगा।

हमारे देश में धान मुख्यतः मचाई उपरान्त रोपाई से उगाया जाता है। इस विधि में हमें ज्यादा मजदूर तथा पानी की आवश्यकता होती है। कृषि में इन दोनों की ही दिन प्रतिदिन उपलब्धता कम हो रही है। इन समस्याओं के समाधान के लिए धान की सीधी बुआई एक विकल्प हो सकता है। लेकिन यह विधि रोपित धान की तुलना में गहन ज्ञान वाली तकनीक है। धान की सीधी बुआई की सफलता के लिए हमें उन्नत सस्य विधियां अपनानी होगी।

mUur lLl fØ;k,i

धान की अच्छी फसल के लिए जरुरी है सही किस्म का चुनाव कर, सही समय पर सही तरीके से बुआई करके, संतुलित पोषण प्रबंधन तथा एकीकृत खरपतवार प्रबंधन किया जाए।

c|vkbl dk le;

धान की सीधी बुआई मानसून के आने से 10–15 दिन पहले लाभकारी है। सामान्यतः यह देखा गया है कि उत्तरी मैदानी भारत में धान की बुआई का सही समय जून का प्रथम पखवाड़ा है।

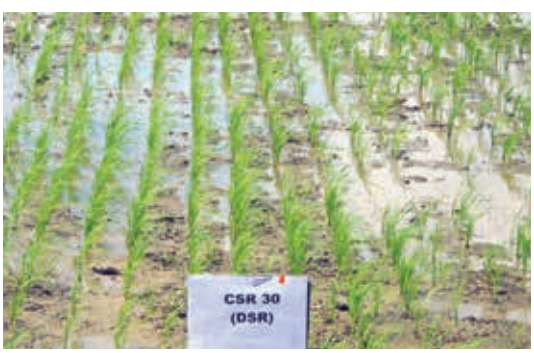

lgh fdLek dk p;u

सीधी बोई हुए धान की सफलता के लिए सही किस्मों का चुनाव एक महत्वपूर्ण कारक है। इस विधि के लिए बासमती धान की किस्में तथा संकर धान की किस्में अधिक उपयोगी है।

lkj.kh 1- /kku dh lh/kh cvkbl d fy, mUur fdLe

क्षेत्र	किस्म
हरियाणा, पंजाब व पश्चिमी उत्तर प्रदेश	सी एस आर–30, पूसा–1509, पूसा बासमती–1121, पी आर एच–10, पूसा बासमती–1, तरावड़ी–बासमती, अराइज स्वीफ्ट, अराइज 6129
पूर्वी उत्तरी प्रदेश	अराइज स्वीफ्ट, अराइज 6129/6444, पी ए यू 201
उत्तराखंड/बिहार	एम टी यू–7029, स्वर्णा

cht mipkj o nj

अच्छे अंकुरण के लिए धान के बीज का बुआई से 10–12 घंटे पूर्व पानी में भिगोकर रखें। बीज जनित बिमारियों की रोकथाम के लिए बीजों को स्ट्रेप्टोसाइक्लीन (0.2 ग्राम सक्रिय तत्व) का कार्बेन्डाजीम या थीरम से उपाचारित करें। धान की बुआई के लिए 20–25 कि.ग्रा./है. बीज दर पर्याप्त है। बीज की यह मात्रा 20 सें.मी. पंक्तियों की दूरी पर 2–3 सें.मी. गहराई पर बोनी चहिए।

अच्छे जमाव के लिए यह जरुरी है कि बुआई अधिक गहराई पर ना करके उथली बुआई करें तथा बुआई उपरान्त 1–2 हल्की सिंचाई करें।

[kr dh r;kjh o cvkb e'khu

धान के अच्छे जमाव के लिए यह अच्छा होगा कि भूमि का लेजर समतलीकरण हो। लेजर समतलीकरण से बीज की भूमि में गहराई भी एक समान होगी तथा सिंचाई के जल का वितरण भी एक समान होगा।

खेत में बीज की सही मात्रा डालने के लिए सही बीज वितरण प्रणाली वाली मशीनें (जिसमें इन्क्लाईंड प्लेट/झुकी हुई प्लेट, खड़ी प्लेट) का उपयोग अच्छा रहता है। इसलिए उन बीज व खाद ड्रील मशीन का उपयोग करें जिनमें यह बीज वितरण प्रणाली हो। इस वितरण प्रणाली में सही मात्रा डालने के साथ–साथ, बीजों की टूट–फूट नहीं होती जो कि फ्लोटेड रोलर प्रणाली में हाती है।

ik"kd rRo@mokjd icku

धान में नत्रजन पोषक तत्व सबसे अधिक मात्रा में प्रयोग होता है तथा इसकी कमी लगभग सभी क्षेत्रों में पाई जाती है। प्रायः किसान भाई मुख्यतः नत्रजन एवं फास्फोरस का ही प्रयोग करते हैं लेकिन सीधे बोई गई धान में गंधक व जस्ता की कमी भी पाई जाती है। ऐसे क्षेत्रों में जहां इन तत्वों की कमी हो वहाँ मृदा परीक्षण के अनुरुप इनका उपयोग लाभदायक होगा।

फास्फोरस व पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के समय ड्रील करें। नाइट्रोजन का उपयोग चार भागों में बांटकर बुआई के 2, 4, 7 व 10 सप्ताह बाद करें।

धान में मुख्य पोषकतत्व एन.पी.के. की मात्रा 150:60:40 कि.ग्रा./है. है। बासमती धान किस्मों के लिए यह 90:60:40 कि.गा./है. की आवश्यकता होती है।

जिंक व लोहा की कमी होने पर जिंक व आयरन सल्फेट का 1.0 प्रतिशत घोल का स्प्रे करें। नत्रजन की मात्रा का प्रयोग पत्ती रंग पट्टिका के आधार पर भी की जा सकती है। संकर व अधिक उपज वाली किस्मों के लिए पत्ती रंग पट्टिका का रंग 4 का प्रयोग करते हैं जबकि बासमती धान के लिए 3 नंबर वाली पत्ती रंग पट्टिका का प्रयोग करते हैं। यदि फसल की पत्ती का रंग पट्टिका रंग से कम गहरा हो तो नत्रजन की मात्रा डाली जाती है अन्यथा नहीं।

/kku dh lh/kh c|vkbl d| ykHk o gkfu

ykHk

- नर्सरी बुआई से छुटकारा
- रोपाई न करने से मजदूरों की जरुरत नहीं
- कम पानी की आवश्यकता
- मचाई (पडलिंग) न करने के कारण धान के बाद की फसल पर कुप्रभाव नहीं।
- कम पानी वाले क्षेत्रों के लिए एक विकल्प

gkfu

- कुछ किस्में ही इस विधि में उपयुक्त पाई गई है इसलिए यदि उपयुक्त किस्में न लगाई जाए तो पैदावार में कमी होती है।
- खरपतवार नियंत्रण एक मुख्य समस्या है तथा लंबी अवधि तक इस तकनीक को अपनाने से खरपतवारों में शाकनाशी प्रतिरोधकता आ सकती है।
- मचाई न करने से कुछ सुक्ष्म तत्वों (जिंक, लोहा) की कमी आ जाती है।
- निमेटोड (सूत्रकृमि) का प्रकोप बढ़ सकता है।
- रोपित धान की तुलना में सीधी बुआई वाले धान को अगेता लगाना पड़ता है जिससे धान से पहले ग्रीष्मकालीन फसल लेना मुश्किल हो जाता है।

f l|pkbl i|c/ku

धान पानी की कमी के प्रति बहुत ही संवेदनशील है। अच्छे जमाव के लिए, बिजाई उपरान्त एक या दो सिंचाई कम अंतराल पर करें। इसके उपरान्त जैसी ही नमी की कमी हो या मिट्टी की सतह पर बालों के आकार का दाररें पड़नी शुरु हो जाए तो सिंचाई कर दें। बुआई के बाद खेत में पानी खड़ा न होने दे अन्यथा जमाव में कमी हो जाएगी।

[kjirokj ic/ku

रोपित धान की तुलना में सीधी बुआई वाले धान में खरपतवार ज्याद प्रमुख समस्या है। रोपित धान में खेत में खड़ा पानी बहुत से खरपतवारों को पनपने से रोकता है जबकि सीधी बुआई वाले धान में बहुत तरह के खरपतवार अत्यधिक मात्रा में पाए जाते हैं। खरपतवारों के प्रकार और सख्ंया की वजह से सीधी बुआई वाले धान में शत–प्रतिशत तक पैदावार में कमी हो सकती है।

खरपतवार प्रतिस्पर्धा का क्रांतिक समय सीधी बुआई (15 से 45 दिन) वाले धान में रोपित धान (रोपाई के 30–34 दिन बाद) की तुलना में अधिक होता है। सीधी बुआई वाले धान के सफलता उत्पादन हेतु प्रभावी खरपतवार प्रबंधन आवश्यक है। प्रभावी खरपतवार नियंत्रण के लिए विभिन्न क्रियाओं को सम्मिलित करना होगा।

fuokjd mik;

- खरपतवार रहित बीज का प्रयोग करें।
- सड़ी हुई गोबर की खाद का प्रयोग करें।
- बीज बनने से पहले खरपतवारों को निकाल दें।

Ñf"kxr vkj ;kf=d fof/k;k

- स्टेल सीड बेड तकनीक अपनाये जिसे खरपतवारों को सिंचाई कर अंकुरित कराकर, बिजाई से पूर्व नॉनसलेक्टिव शाकनाशी जैसे ग्रामैक्सोन या ग्लाइफोसेट 0.5 प्रतिशत की दर द्वारा मार देते हैं या एक या दो उथली जुताई कर नष्ट कर देते हैं।
- फसल जमाव उपरांत कुछ दिन पानी भरकर रखने से खरपतवार को प्रकोप कम रहता है।
- पंक्तियों में बोई फसल में खुरफी या हाथ वाली हो/फसल हो या वीडर/कोमोवीडर खरपतवार नियंत्रण में काफी प्रभावी हैं।
- अच्छी प्रतिस्पर्धा वाली धान की किस्मों का चयन करें।

जीरो टिलेज विधि से बुआई करके फसल अवशेषों का सतह पर पलवार की तरह रखने से भी खरपतवरों के प्रबंधन में सहायता मिलती है। पलवार सूर्य प्रकाश को रोककर खरपतवार जमाव व बढ़वार को कम करते है। जीरो टिलेज में सतह पर फसल अवशेष खरपतवार बीज खाने वाले परभक्षियों को आश्रय देते हैं तथा खरपतवारों के बीज को कम करने में सहायता करते हैं।

jklk;fud fu;=.k

धान में खरपतवार नियंत्रण के लिए विभिन्न विधियों में रासायनिक विधि लोकप्रिय हैं क्योंकि ये कम लागत व समय में प्रभावी खरपतवार नियंत्रण देती हैं। शाकनाशियों द्वारा प्रभावी खरपतवार नियंत्रण के लिए जरुरी है शाकनाशियों का चयन खरपतवारों के अनुरुप किया जाए तथा इनका प्रयोग सही मात्रा, सही समय और तरीके से किया जाए।

धान में प्रयोग होनी वाले मुख्य शाकनाशी उनकी मात्रा और प्रयोग का समय नीचे सारणी में दिया गया है।

lkj.kh 2- lh/kh cht h /kku d e[; 'kkduk'kh

शाकनाशी	मत्रा सक्रिय तत्व ग्रा./है.	प्रयोग का समय (बुआई के बाद दिन)	खरपतवार के प्रकार नियंत्रण
पैन्डिमैथालिन	1000	0–3	संकरी व चौड़ी पत्ती
ओससाडाइरजिल	90	0–3	संकरी व चौड़ी पत्ती
पाइराजोसल्फयूरोन	20	1–3	संकरी व चौड़ी पत्ती
राइस–स्टार (फिलोक्साप्रोप+सेफनर)	75–90	15–20	संकरी पत्ती
साहयलोफोप–ब्यूटाइल	120	120	संकरी पत्ती
प्रोपानिल	4000–5000	15–20	संकरी व चौड़ी पत्ती
प्रोपानिल+ब्यूटाक्लोर	4000+1250	10–15	संकरी व चौड़ी पत्ती
प्रोपानिल+पैन्डिमैथालिन	4000+1250	10–15	संकरी व चौड़ी पत्ती
अजिमसल्फयूरोन	25–35	15–20	संकरी, चौड़ी व मोथा कुल
इथोक्सीसल्फयूरोन	18	15–20	संकरी, चौड़ी व मोथा कुल
ट्राईक्लोपायर	500	15–20	चौड़ी पत्ती
2,4 डी	500	15–25	चौड़ी पत्ती
कारफेन्ट्राजोन	20	15–20	चौड़ी पत्ती
आलमिक्स (क्लोरिमूरोन+मैटसल्फसूरोन)	4 (2+2)	15–25	चौड़ी व मोथा कुल
बिस्पाइरिबेक	25	15–25	चौड़ी पत्ती
पिनोक्सालुम	22.5–25	15–25	चौड़ी पत्ती

सीधी बिजाई वाले धान में बहुत तरह के खरपतवार बहुतर अधिक संख्या में होने के कारण दो से तीन तरह के शाकनशियों की आवश्यकता पड़ती है।

बुआई के तुरंत बाद पैन्डिमैथालिन 1000 ग्रा./है. के प्रयोग के बाद 20–25 दिन बिसपायारिबेक 25 ग्रा.+(क्लोरीम्यूरोन+मैटसल्फ्यूरान) आलमिक्स 4 (2+2) ग्रा. सक्रिय तत्व/हैं. का प्रयोग करने पर संकरी व चौड़ी दोनों तरह के खरपतवारों का प्रभावी नियंत्रण होता है।

राइस स्टार (फिनोक्साप्रोप+सेफनर)+ इथोक्सीलफ्यूरान 90+18 ग्रा. सक्रिय तत्व/है. के मिश्रण के प्रयोग से संकरी व चौड़ी पत्ती वाल खरपतवारों का नियंत्रण होता है।

राइस स्टार (फिनोक्साप्रोप) या साइटेलोफोप के साथ आलमिक्स या 2,4 डी के मिश्रित घोल को प्रयोग न करे क्योंकि इनका मिश्रण विरोधात्मक है। इससे बचने के लिए फिनोक्साप्रोप या सइटैलोफोप के स्प्रे के 4–5 दिन बाद 2,4 डी या आलकिम्स का प्रयोग करें।

संकरी चौड़ी पत्ती वाले खरपतवारों के नियंत्रण के लिए प्रोपानिल+ ब्यूटाक्लोर (4500+1250) ग्रा./है. के मिश्रण को बुआई के 10–12 दिन प्रयोग करें। इस मिश्रण का एक और स्प्रे 8–10 दिन बाद करने पर प्रभावी खरपतवर नियंत्रण मिलता है।

,dhÑr [kjirokj ic/ku

सीधी बोई हुई धान में खरपतवार नियंत्रण एक जटील कार्य है। खरपतवारों के प्रभावी नियंत्रण तथा लंबी अवधि तक खरपतवारों का नियंत्रण के जरुरी है कि विभिन्न विधियों का एकीकृत प्रयोग किया जाए। जिसमें स्टैल सीड बेड, प्रतिस्पर्धात्मक प्रजातियों का प्रयोग, पानी व खाद का समुचित प्रबंधन के साथ–साथ शाकनाशियों के मिश्रण का प्रयोग हो। शाकनाशियों के प्रयोग के बाद यदि खरपतवार रह जाते हैं तो उन्हें हाथ द्वारा/यांत्रिक विधि द्वारा निकाल दें। इससे खरपतवारों में कमी के साथ पैदावार में बढ़ोत्तरी होती है। खरपतवार प्रतिरोधकता से बचने के लिए शाकनाशियों को अदल–बदल कर छिड़काव करें।

धान के पूरे पराल में गेहूँ की टर्बो सीडर से बीजाई

fodkl pkèkjh

xko % rjkoMh] djuky] gfj;k.kk

आमतौर पर किसान गेहूँ की बीजाई खेत में धान के पराली में आग लगाकर या अच्छे से खेत की बहाई (जुताई) करके करता है, पर अब जो नई तकनीक आई है उसका नाम है हैप्पी/टर्बो सीडर। मैं पिछले 4 वर्षों से गेहूँ की बीजाई पूरे पराल में टर्बो सीडर से करता आ रहा हूँ।

ykHk

- इस मशीन से बीजाई करने में बहुत से फायदे है। समय व डीजल की बचत, समय से बीजाई।
- आग न लगाकर पर्यावरण को बचाना एवं भूमि की उर्वरक शक्ति को बढ़ाना।
- अगर हम पराल खेत में रखते हैं तो हम गेहूँ में एक पानी की बचत कर सकते हैं क्योंकि हमारे खेत में पराल रखने से नमी बनी रहती है।
- लाईन से लाईन के बीच में जब पराल होगी तो हमारे खेत में खरपतवार भी कम आते हैं जो एक सीधी बचत है। इस विधि से बीजाई कर खरपतवार पर नियंत्रण पा सकते हैं। लगातार इस विधि से बीजाई करने से 2 वर्ष में 70 प्रतिशत तथा 3 वर्षों में 90–95 प्रतिशत तक खरपतवार नियंत्रण संभव हैं।
- मार्च के महीने में अगर गर्मी ज्यादा पड़ने लगे तो टर्बो सीडर द्वारा की गई बीजाई वाली गेहूँ में इसका प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि ऊपरी सतह पूरी तरह से पराल से ढकी होती है जिसके परिणाम स्वरुप पैदावार कम नहीं होती है।
- मार्च के महीने में अगर तेज हवा चले और अगर हमें पानी लगाना हो तो हमें हैप्पी सीडर वाले खेत में पानी न भी लगाये तो भी पैदावार पूरी मिलती है।
- खेत की जुताई करके गेहूँ की बिजाई में संभावित खर्चें

फानों को कटर से काटना	500 रुपये/एकड़
खेत की 2 बार जुताई	900 रुपये/एकड़

खेत की 1 बार जुताई	500 रुपये/एकड़
बिजाई पूर्व सिंचाई	500 रुपये/एकड़
खेत की हैरो से 2 बार तैयारी	900 रुपये/एकड़
एक बार पाटा लगाना	100 रुपये/एकड़
ड्रील से बिजाई	800 रुपये/एकड़
रोटावेटर से बिजाई	1200 रुपये/एकड़

जुताई करके गेहूँ की बिजाई करने में हमें 10–15 दिन लग जाते हैं और बिजाई में भी देर हो जाती है। जबकि टर्बो सीडर से बिजाई करने पर हम धान के कटने के तुरन्त बाद बिजाई कर सकते हैं। टर्बो सीडर से एक एकड़ की बिजाई हम मात्र 1200 रुपये में कर सकते हैं।

कम्बाईन से धान कटने के बाद जो पराल पीछे गिरती है हमें उसे बराबर से बिखेरना होता है या तो कम्बाईन के पीछे स्प्रेडर लगा हो जो पीछे वाले पराल को बराबर से बिखेरा जा सकता हो या हम उसे मजदूर से बराबर–बराबर खिंड़वायें अगर हम ऐसे नहीं खिंडवायेंगे तो जमाव कम आ सकता है। हैप्पी सीडर से बिजाई करने से पूर्व हमें ये सावधानियां बरतनी है।

पिछले 4 वर्षों में हैप्पी सीडर से बीजाई करने से मेरी 2–3 कुंतल/एकड़ कम हो गया है। खेत की उवर्रक शक्ति बढ़ी है और खेत में मित्र जीव भी आ गये हैं जैसे केंचुए।

पिछले कुछ वर्षों में ज्यादा वर्षा होने पर (गेहूँ के समय) खेतों में पानी खड़ा हो गया पर जो खेत लगातार बिना जुताई के चल रहे थे और उनमें पूरे पराल में बीजाई हो रही थी उसके परिणामस्वरुप उन खेतों में वर्षा का पानी खड़ा नही हुआ क्योंकि मित्रजीव (केचुओं) ने जमीन में बारीक–बारीक सुराग कर रखे थे जिससे वो पानी नीचे जमीन में चला गया और हमारी फसल भी बच गई।

संरक्षण तकनीकों पर एक प्रगतिशील किसान का अनुभव

egkohj fl g jkM
xko% <kBjFk] thUn] gfj;k.kk

जीन्द जिले के गांव रामपुरा (सफीदों) में पहली बार 1996–97 में कृषि विश्वविद्यालय हिसार के कृषि विज्ञान केन्द्र जीन्द में सरदार कन्धार सिंह व बलकार सिंह के खेतों पर जीरो टिलेज के प्रदर्शन किए गये और 14 मार्च 1997 में गेहूँ दिवस मनाया गया। इस कार्यक्रम में कृषि विभाग के उपनिदेशक श्री एस.पी.एस. नैन, सह निदेशक (कृषि), चण्डीगढ़ श्री भंवर सिंह तथा संयुक्त निदेशक (कृषि) करनाल, डॉ. एस.एन. कौशिक भी उपस्थित थे। डॉ. यशपाल मलिक कृषि विज्ञान केन्द्र जीन्द ने एक एकड़ में तीन हिस्से करके एक हिस्से में जीरो टिलेज मशीन द्वारा बिजाई, एक हिस्सें में दो बार हैरो फिर सुहागा लगाकर छींटे द्वारा बीजाई और तीसरे हिस्से में सामान्य खेत तैयार करके साधारण खाद व बीज ड्रिल से बिजाई की थी। दोनों किसानों के खेतों पर जीरो टिलेज की पैदावार अन्य दो तरह से गई बिजाई से अधिक आयी तथा जीरो टिलेज के परिणाम उत्साहजनक पाये गये।

अगले साल मैंने भी जीरो टिलेज मशीन से गेहूँ की बिजाई करने का मन बनाया और डॉ. यशपाल मलिक के सहयोग से इसमें कामयाब भी रहा। शुरु में गांव वाले डॉ. मलिक के साथ–साथ मुझे भी पागल कह कर मजाक उड़ाते थे। बाद में जब फसल तैयार हुई तो डॉ. मलिक ने बड़े प्यार से मजाक उड़ाने वालों को इसके फायदे सिलिसिलेवार समझाए। मसलन एक गज में बालियों की अधिक संख्या, पानी, ऊर्जा, डीजल, समय की बचत के साथ–साथ खरपतवार भी जीरो टिलेज विधि में बिजाई करने पर कम आते हैं। इस विधि से गेहूँ की फसल गिरती भी नहीं है। उस दिन से आज तक मैं इस तकनीक को अपना रहा हूँ। मेरे तजुर्बे से सीख कर मेरे भाई सूबे सिंह ने सन् 2000 में सरकारी सब्सिडी का लालच न करते हुए अपने पैसे से जडियालागुरू, अमृतसर (पंजाब) जाकर जीरो टिलेज मशीन खरीद कर ले आये और उस दिन से आज तक जीरो टिलेज अपना कर उस मशीन का पूरा फायदा उठा रहे हैं। मेरा भाई 70–80 एकड़ की खेती करता है और सारी गेहूँ की बिजाई जीरो टिलेज से ही करता है। धीरे–धीरे इस तकनीक को मेरे गांव के अन्य किसानों ने

भी अपनाया। आज मेरे गांव में 8–10 जीरो टिलेज मशीनें काम कर रही हैं जो कि हमारी जरुरत को पूरा करनें में सक्षम हैं। कमी पड़ने पर हम लोग कृषि विभाग या कृषि विज्ञान केन्द्र की जीरो टिलेज मशीनों को भी किराये पर लेकर प्रयोग करते हैं।

एक दो बार वर्ष 2001–02 व 2002–03 में जीरो टिलेज मशीन के प्रयोग वाले खेतों पर उपज कुछ कम आयी परन्तु फिर भी यह साधारण मशीन वाले खेतों के कुछ ज्यादा ही थी। जीरो टिलेज से बिजाई करके गेहूँ की पैदावार का ब्यौरा तालिका 1 में दिया गया है।

lkj.kh 1- thjk fVyst e'khu }kjk xgw dh inkokj dk fooj.k

xgw dh fdLe	fc tkbl o"k	thjk fVyst ls inkokj ¼eu@ifr ,dM½	Lkk/kkj.k fc tkbl ls inkokj ¼eu@ifr ,dM½
एच डी 2329	1997–98	45	43
पी बी डब्ल्यू 343	1998–99	55	52
पी बी डब्ल्यू 343	1999–00	50	48
पी बी डब्ल्यू 343	2000–01	51	50
पी बी डब्ल्यू 343	2001–02	44	42
पी बी डब्ल्यू 343	2002–03	46	44
पी बी डब्ल्यू 343	2003–04	70	68
पी बी डब्ल्यू 343	2004–05	45	43
पी बी डब्ल्यू 343	2005–03	48	45
एच डी 2851	2006–07	50	47

40 कि.ग्रा. = 1 मन

मेरे खेतों पर कृषि विज्ञान केन्द्र, जीन्द के डॉ. यशपाल मलिक ने बेड प्लांटर व रोटावेटर के भी तजुर्बे किये परन्तु सबसे ज्यादा लाभ गेहूँ की बिजाई से जीरो टिलेज मशीन वाले खेतों का रहा है जिससे मेरे गांव में डीजल पर खर्च घटा है और धान–गेहूँ फसल चक्र में गेहूँ की बिजाई का क्षेत्र बढ़ रहा है। आज के विविधीकरण के समय में भी अन्य फसलों व जैविक खेती में जीरो टिलेज मशीन के प्रति किसानों के रुझान बढ़ रहा है जिसके परिणाम बहुत बढ़िया देखने में आये हैं। सन् 2003–04 से मैंने रोटावेटर व बेड प्लांटर के प्रयोग किए जिसके परिणाम प्रति एकड़ निम्न प्रकार से है।

lkj.kh 2- jkVkoVj o cM IykVj fof/k ls fctkbZ djus ij xgsa dh mit dk C;kjk

fdLe	Ok"kZ	thjks fVyst ¼eu@ifr ,dM½	jkVkoVj ls fNVkbZ ¼eu@ifr ,dM½	cM IykVj ¼eu@ifr ,dM½
पी बी डब्ल्यू 343	2003—04	70	64	62
पी बी डब्ल्यू 502	2004—05	45	40	42
पी बी डब्ल्यू 502	2005—03	48	45	44
एच डी 2851	2006—07	50	46	47

यह भी देखने में आया कि रोटावेटर से बिजाई करने पर बीज गहराई में नहीं जाता जिसके कारण जड़े ऊपर ही रहती है और मौसम प्रतिकूल होने पर पौधे गिर जाते हैं तथा पैदावार व गुणवत्ता घट जाती है। रोटावेटर से जहां छींट कर बिजाई की गयी वहां बहुत कम पैदावार मिली जबकि बेड प्लांटर की बीजाई भारी जमीनों में उचित नहीं पायी गयी। खेत की तैयारी में काफी खर्च बढ़ जाता है। रेतीली जमीनों में यह विधि सफल है। बीज कम, पानी कम, खरपतवारों को यांत्रिक विधि से जल्दी से जल्दी समाप्त किया जा सकता है और सहफसली खेती आसानी से तथा बढ़िया होती है। बेड प्लांटर की बुआई से गेहूँ अच्छा और दाना मोटा होता है।

"गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा"
के इस अंक से उत्कृष्ट
आलेख प्रतियोगिता की शुरुआत
की जा रही है। इस प्रतियोगिता में
चयनित दो उत्कृष्ट आलेखों
को निदेशालय के
स्थापना दिवस (9 सितम्बर)
के अवसर पर
पुरस्कृत किया जाएगा।

आगामी अंक

गेहूँ एवं जौ स्वर्णिमा का छठा अंक (वर्ष २०१४) "कृषि में उत्पादन एवं आय बढ़ाने की नवीनतम व समसामयिक तकनीकें" पर आधारित होगा।

कृपया अपने लेख 31 जुलाई 2014 तक anujp2001@gmail.com/ dwrrajbhasha@gmail.com पर Kruti Dev 10/16 में तथा फोटो JPEG प्रारूप में भेजें।

गेहूँ अनुसंधान निदेशालय

पोस्ट बॉक्स-158, अग्रसेन मार्ग, करनाल - 132 001
दूरभाषः 0184-2267490 फैक्सः 0184-2267390
ई-मेलः dwr@vsnl.com वेबसाईटः www.dwr.in